

भारत एक है

मन की एकता और सच्ची राष्ट्र-भावना
की जगाने वाली एक अनमोल पुस्तक

सीताचरण दीक्षित

राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली



गांधी स्मारक निधि, राजघाट, नई दिल्ली १
के सहयोग से
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली ६
द्वारा प्रकाशित

© गांधी स्मारक निधि

प्रथम संस्करण मई १९६७

मूल्य एक रुपया

मुद्रक हिन्दी प्रिंटिंग प्रग, कबीर रोड, दिल्ली ६

वक्तव्य

अबबर इलाहाबादी ने उद्गू म कविता लिखी थी—

बुद्ध मियाँ भी हज़रत गाँधी व साथ हैं ।

गो छाके भुस्त हैं मगर बाँधी व साथ हैं ॥

इसका अर्थ है कि आम आदमी भी महात्मा गांधी के रास्त पर चलने को आतुर है यद्यपि स्वयं उसकी अपनी शक्ति सीमित है परन्तु एक आंदोलन के वायुमंडल में वह भी उठे-उठे त्याग करने की सामर्थ्य पा गया है । यह गांधी की आधी जा भारत में श्रेष्ठ और जिम्मेदार सत्कार प्रभावित हुआ वह था सामान्य व्यक्ति की त्याग सामर्थ्य को बढ़ानेवाले वातावरण की पावनता । देश की आजादी के लिए मनुके मन में तड़पन पैदा हो गई थी, पर गांधीजी ने एक ऐसा रास्ता सुझाया जिसमें हर नागरिक अपना योगदान दे सक । अहिंसा का जो रास्ता था वह थोड़े-नेताओं को पदा करने की बजाय आम जनता को ऊपर उठाने का रास्ता था, और उससे करोड़ों में चेतना आई और लाखों ने उममें अपने त्याग का उदाहरण रखा ।

पर आई आजादी । गांधी का एहिक जीवन समाप्त हुआ । सत्ता और संपत्ति की सनातन होड़ में त्याग की शक्ति पर आधारित जनशक्ति के रास्ते से वाफिला दूसरा तरफ मुड़ गया और ऐसा लगा कि गांधी की आधी धम गई । अधिक राजनीतिक सामाजिक जीवन में जो भी परिवर्तन लाने हैं उनको केवल राज्य सत्ता व आधार पर लाना सम्भव नहीं—यह भुला दिया गया और लोकशक्ति का जो जागरण गांधी युग में हुआ था और जो आजादी के बाद आगे बढ़ना था वह न बढ़ा । त्याग के स्थान पर सत्ता और और लोक के स्थान पर राज्यशक्ति के अधिक ज़ार देन से जो नतीजे आए हैं वह सामने हैं ।

पर क्या जो सांस्कृतिक चेतना के तत्त्व गांधीजी ने प्रतिपादित किए भुलाए जा सकते हैं ? भागत में उनपर एक हलका परदा छा गया है, संसार में, सभी देशों में, तत्त्ववत्ता उत्तरोत्तर अनुभव कर रहे हैं कि हिंसा की पराकाष्ठा के इस युग में अहिंसा की गति का विकास ही उसका नाम कर सकेगा, और इसके लिए गांधी इस युग में एक दीपस्तम्भ हैं। यह पुस्तक तथा अन्य दो पुस्तकें गांधी विचार के पापण में गांधी जन्मशताब्दी (१९६६) के उपलक्ष्य में गांधी स्मारक निधि ने तैयार कराई हैं तथा राजपाल एण्ड सन्स की ओर से प्रकाशित हो रही हैं। हम पूर्ण आशा कि जबान में सादी, विचारों में सहजगम्य तथा कठोरता से परे और मौलिक तथा रोचक रूप में लिखी विद्वान लेखिका की ये पुस्तकें अपने उद्देश्य सफल होंगी और निधि की लोक जागरण की यह आशा पूरी करेंगी कि—
 बूद बूद से गागर भरती, नदी-नदी से सागर।

किरण इकट्ठा हुई कि होता सारा जगत उजागर ॥

देवेन्द्र कुमार गुप्त

गांधी स्मारक निधि
 राजघाट
 नई दिल्ली १

(देवेन्द्र कुमार गुप्त)
 मंत्री

पुस्तक के सम्बन्ध में

भारत में एकता और राष्ट्र भावना का अभाव नहीं है। परन्तु समय समय पर ये भावनाएं मंदा पड़ जाती हैं और हम सकीण स्वार्थों के बशो भूत होकर समग्र राष्ट्र के हितों की उपेक्षा कर जाते हैं। इसलिए इन भावनाओं को सहज और स्वाभाविक बना देना आवश्यक है। राष्ट्रीय हितों के प्रति सबके भाव समान हो जान पर ही हम द्रुत गति से अपनी उन्नति और स्वतंत्रता की रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं।

भारत के इतिहास में हृदय की एकता और राष्ट्र भावना के संगठन के जो प्रयत्न अब तक हुए, उनमें महात्मा गांधी के प्रयत्न सर्वाधिक व्यापक और सफल रहे हैं। उनके चतुर्मुखी प्रयत्न का आधार त्याग था, भोग नहीं, प्रेम था, द्वेष नहीं, गाय था, अत्याय नहीं, प्रत्येक का हित था, समाज विशेष अथवा वर्ग विशेष का नहीं, शाश्वत था, क्षणिक नहीं। परन्तु स्वाय, सकीणता और द्वेष की विभाजक शक्ति साम्राज्यवादी राजनीति से पोषण ग्रहण करके इतनी प्रबल हो उठी कि वे भी अपने प्रयत्नों में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सके।

मेरा अटल विश्वास है कि गांधीजी ने जो मान दिखाया उसपर चल कर ही हम हृदय की एकता और सच्ची राष्ट्र भावना को दृढ़ कर सकते हैं, वही स्वामी सुख और शांति का सर्वोत्तम माग है।

गांधीजी ने सब भारतीयों की सुपुष्ट शक्ति का जागृत कर उन्हें एक सामान्य लक्ष्य की ओर बढाया। उन्होंने सिखाया कि सकीण स्वार्थों को भुलाकर समस्त भारत के और उसके द्वारा समस्त मानवजाति के कल्याण में अपना कल्याण देखो। इसीके अनुसार आचरण करो और अपने जीवन को दालो, पंचमवर्ग अर्थात् दलित और अत्याय-पीडितों के प्रति प्रायश्चित्त

की वृत्ति में काम लो दरिद्रनारायण का तिरस्कार करने के बदल तापण और सत्कार करो ।

हृदय की एकता उद्दीप्त और प्रदीप्त करने के लिए बुद्धि भावना और कम—तीनों का प्रेरित करना आवश्यक है । इस पुस्तिका में मुख्यतः बुद्धि और भावनाओं को ही प्रभावित करने का प्रयत्न पूरी ईमानदारी के साथ किया गया है । कम का माग कठिन है । उसके निर्देशन और उसकी प्रेरणा देने का अधिकार तपोपूत मनीषियों का है । उमम दखल देने में सकोच किया है । इस बर्गी के होते हुए भी यदि इस पुस्तिका में लक्ष्य सिद्धि का माग जरा भी प्राम्त्त हो तो मैं अपने आपको धन्य मानूंगा ।

गांधी स्मारक निधि के यशस्वी मंत्री श्री देवेन्द्रभाई का प्रबल प्रेरणा क बिना यह पुस्तिका सम्भव न हाती । अतएव यदि किसीका इसका श्रेय मिलना चाहिए ता उन्हें ही । प्रकाशक तो धन्यवाद के पात्र हैं ही ।

दिल्ली ६ मई, १९६७

—सीताचरण दीक्षित

सूची

१ यह है देग हमारा	७
२ यह हमारा विरामत	१५
३ जीवन क उतार चडाव	२०
४ राष्ट्र भावना मे व्याघात	२६
५ स्वातंत्र्य चेतना और सघष	३३
६ महापुरुषा का युग और नय प्रयत्न	४०
७ कुछ शिथिलत मुसलमाना की प्रतिक्रिया का रहस्य	४८
८ अधकार और प्रकाश	५६
९ गाधी जी के नतृत्य मे स्वराज्य-सग्राम	६४
१० गाधीजी का स्वराज्य का आदग	७४
११ स्वराज्य और सविधान	८४
१२ स्वराज्य की समस्याए	९६
१३ समस्याआ का कुजी राष्ट्रध्यापी एकता	१०६
१४ उपसहार	११६

अहरह तव आह्वान प्रचारित
सुनि तव उदार वाणी
हिन्दू बौद्ध सिख जैन पारसिक
मुसलमान ख्रिस्तानी
पूरव पश्चिम आस
तव सिंहासन पासे
प्रेम हार होय गाथा
जन गण एतय-विधायक जय ह !
भारत भाग्य विधाता !

—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

एक यह है देश हमारा

हिमालय से हिन्द महासागर तक और नफाम द्वारका तक फैला हुआ यह विशाल देश हमारी भारतमाता है।

अभी कुछ ही समय पूर्व हमारी माना व आयुष्य में इतने समय का महत्त्व ता कुछ दिना के ही बराबर है—यह सब तरह से समृद्ध और उन्नत थी। परन्तु हमारे लिए यह सदा से कमभूमि, धमभूमि, स्वर्ग से भी महान् भूमि रही—आज भी है।

ऋषि मुनियो ने यहा तपस्या करके अखिल सृष्टि के बल्याण के मंत्र जगाए। साधु-सता ने अपनी मंगल वाणी में 'सोऽह गान करके यहा के कण-कण को प्राण पूरित किया। आचार्यों ने सत्य और मिथ्या, विद्या और अविद्या, हिंसा और अहिंसा, जीवन और मरण का रहस्य बताकर हमारे परमलक्ष्य का पथ प्रशस्त किया, उसे ज्योतिमय बनाया।

धामो और तीर्थों की प्रेरणा

रामेश्वर और बद्रीनाथ, पुरी और द्वारका—चारो दिगाआ मे य जो चार धाम हैं, सारे भारत को जनता को सम्यता के उप काल से ही कम, भक्ति और पान का पावन सदा दत्त आ रहे हैं। भारतमाता की अखंडता की दुहाई देकर य बताते हैं कि जीवन टुकड़े-टुकड़ में बँटा हुआ नहीं, अखंड है।

काशी और प्रयाग, वृन्दावन और मथुरा, मथुरा और अयोध्या, ऋषिकेश और कयाकुमारी, गया और गोकुण, दक्षिणेश्वर और पठरपुर से प्रवाहित भक्ति धाराए निरन्तर सदेव द रहा हैं कि मनुष्य, तू अपने-आपको समझ अपन अन्दर छिपी हुई दिव्यता को पहचान और अखिल सृष्टि की एकात्मता का साम्यात्कार कर। सारे भारत का आकाश गूंजता है

सर्वत्र सुग्नि सत्तु सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्त मा बन्दिद्दुःसमाप्नुयान् ॥
 ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति ॥

महावीर और बुद्ध के सन्देश

यह दखिए, काशी के पास ही यह सारनाथ है। यहाँ भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम सदेश सुनाया था। उन्होंने कहा था, 'वर से वर का कभी शमन नहीं होता, बर से होता है। क्रोध को जक्रोध से जीतो बुलाई को अच्छाई से, कृपणता को दान से, असत्य को सत्य से।' उन्होंने और कहा था "दुराचारी, असयमी होकर देश का अन्न—राष्ट्र पिंड—ज्ञानकी अपक्षा अग्निशिखा के समान तप्त लोहे का गोला खाना अच्छा है।' परन्तु ये बातें काम में न आए तो कहने से क्या लाभ? इसलिए उन्होंने कहा, 'धर्मग्रन्थ का जितना ही पाठ करे, यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उनके अनुसार आचरण नहीं करता तो दूसरे भी गाए गिनने वाले म्वाल के समान वह धर्मणत्व का भागी नहीं होता।'

और निकट का चाराणसी में भगवान बुद्ध ने बार बार बोधिसत्त्व के रूप में जन्म धारण किया था। बोधगया कुछ पूरब की ओर है। वह दिग्गल अश्वत्थ अब भी पुकारकर कह रहा है कि मरी ही छाया में भगवान न बोध प्राप्त किया था।

यही तो यह बंगाली भी है, जिसके पास एक पहाड़ी पर खड़े होकर देह त्याग से कुछ ही पूरब भगवान न अपने स्वयं मदिरो और विहारा को देखकर आनन्द से कहा था, 'किन्तु जम्बुद्वीप मनोरम जीवित मनुष्याणाम।' अर्थात्, यह भारतवर्ष जितना सुन्दर है! यहाँ के मनुष्या का जीवन मन को रमा लनेवाला है।

इसी बंगाली के पास एक गाव में भगवान महावीर का भी जन्म हुआ था। महावीर ने 'अहिंसा परमोधम' की शिक्षा दी और कहा कि पाप की जिम्मेदारी सिर्फ पाप न करने से पूरी नहीं होती। पाप न तो किया जाए, न कराया जाए और न उसमें किसी प्रकार की सहायता की जाए तभी मनुष्य उनकी जिम्मेदारी से मुक्त हो सकता है। पाप के साथ पूरब असहकार होना चाहिए।

अशोक से चिन्तित तब

मह निकट ही पाटलिपुत्र भी देख लीजिए जिसे आजकल पटना कहा जाता

है। यही हमारे प्रातः स्मरणीय सम्राट अंगक की राजधानी थी। यही उनके दादा चन्द्रगुप्त मौर्य ने भा राज्य किया था। सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राजधानी भी यही थी। उम समय दिल्ली का विशेष महत्व नहीं था।

मे, इधर नालंदा विश्वविद्यालय के भग्नावशेष हैं। इस विश्वविद्यालय में दण विदेश के हजारों विद्यार्थी आकर विद्याध्ययन किया करते थे।

जन तीर्थकरा के प्रसिद्ध मन्दिर भारत के दस पश्चिमी भाग में हैं। यह आबू पर्वत है। इसपर वन जन मन्दिरा के अनुपम शिल्प-मौन्द्य को देखने के लिए मसूर भर से यात्री आते हैं। इससे उत्तर की ओर यह महाराणी पद्मिनी और राणाप्रताप का चित्तौरगढ़ है। यहाँ की भूमि से अब भी पद्मिनी के रत्न की सुगंध आती है। गांधीजी ने इसे स्वतंत्र कराकर महाराणा की प्रतिमा पूज कर दी है।

स्वाजा चिश्ती साहब की दरगाह इस अजमेर में है, जिसके पास पुष्कर तीर्थ है। चिश्ती साहब यहाँ आराम करते-करते मुसलमानों और हिन्दुओं को अपने भेद भाव मिटाकर भाई भाई जैसे रहने की प्रेरणा देते रहते हैं। प्रति वर्ष हजारों हिन्दू और मुसलमान उनकी दरगाह पर आकर उनकी आगीवादी लेते हैं और भक्त मनुष्य बनने का प्रयत्न करते हैं।

वीरभोग्या दिल्ली और पंजाब भूमि

दिल्ली तो आपका बतानी न होगी। कौरव पांडवों के हस्तिनापुर और इन्द्र प्रस्थ के जमाने से अब तक यहाँ जा राजनीतिक उदय-पुत्रल होती रही उसमें आप परिचित हैं। यही भारत की एकता की कड़ियाँ मिलती हैं। यही से भारत के शासन का, नव निमाण का सूत्र संचालन हाता है। यह भारत की राजधानी या या कहिए कि, प्रजाधानी है। यही मिखा के महान गुरु श्री तेगबहादुर का गिर उतारा गया था, परंतु वे अब भी अपने गिध्या का—मिखा को—वसी हा प्रेरणा देते रहते हैं। उनके स्मारक के रूप में यहाँ एक विशाल गुहद्वारा बना हुआ है, जिस गीगायज गुहद्वारा कहने हैं। सिख और हिन्दू उसमें आकर वीरता, भक्ति और सज्जीवन का सदेश पाते हैं। यही वह बुजुवमीनार भी है, जिसके बारे में आपने पुस्तक में पढ़ा है। जब-कभी आप दिल्ली आए, उसे जरूर देखें। चिश्ती साहब की दरगाह के समान ही यहाँ भी स्वाजा निजामुद्दीन साहब बोलिया की दरगाह है।

अब ज़रा उत्तर की ओर चलिए। यह पंजाब है और इसमें यह अमृतसर है। यहाँ सिखों का सबसे बड़ा गुम्बारा है। यह सिखा के सगठन, शक्ति और धार्मिक प्रेरणा का अब भारत में सबसे बड़ा केन्द्र है। दुर्गा का भी एक बहुत बड़ा मन्दिर यहाँ है। हिन्दू और सिख इस नगर में बड़े प्रेम से हिल मिलकर रहते हैं।

ऋषि-मुनियों के आश्रय स्थल

हिमालय, विन्ध्याचल सह्याद्रि, नीलगिरि और अरुणाचलम की गुफाओं में कितने ऋषि-मुनियों को आश्रय दिया है। अरुणाचलम में तो अभी-अभी महर्षि रमण के दर्शन सुलभ थे। उनका जाश्रम आज भी उनकी दिव्य वाणी से मुखरित है। यह कुछ दक्षिण की ओर योगिराज श्री अरविन्द की तपोभूमि पाँडिचेरी है। तिरुक्कुरल जैसे महान धर्मग्रन्थों और आलवारों की जन्मभूमि तमिलनाडु यही है। महाकवि भारती का पावन संगीत अभी कुछ वर्ष पूर्व तक इस प्रदेश में गूँजता था।

थोड़ा पश्चिम की ओर यह दक्षिण का मनोरम और सचेतन प्रदेश केरल है। इसके इस कालडी ग्राम में जगद्गुरु आदिशंकराचार्य ने जन्म लिया था। उत्तर में जिस तरह बंगाल साहित्य और कला का घर है उसी तरह दक्षिण में यह प्रदेश है। यहाँ अब भी मात-वश की प्रथा चलती है।

मसूर और कर्नाटक के जन मन्दिरों और प्राकृतिक छटा को तो आप भुला ही नहीं सकते। यहाँ जोग के प्रताप ही ऐसे हैं जिनकी ऊँचाई की बराबरी दुनिया का कोई प्रताप नहीं कर पाता। इस मनोरम प्रदेश में संगीत का जो अनुपम विकास हुआ वह न होता तो आश्चर्य की बात होती। आंध्र प्रदेश की प्राचीन कला यहाँ के मन्दिरों और खडहरों से बोलती है। उड़ीसा में आपने पुरी का दर्शन तो किया परन्तु कोणाक का मूल मन्दिर देखना कस भूल गए? और, फिर पश्चिम की ओर गोआ की प्रकृति छटा तथा वहाँ का दूध-सागर प्रपात आपने देखा है? यदि नहीं देखा तो उसे देखने के लिए ही एक बार गाँवा हो जाएँ।

जहाँ साधु सत्ता ने देशभक्ति सिखाई

यह सत भूमि, लोकमान्य तिलक और छत्रपति शिवाजी की रगस्थली महाराष्ट्र है। यहाँ के लोग सत्ता के नाम का भी कीतन करते हैं

निवृत्ति जानदेव सोपान मुक्ताबाइ
एकनाथ नामदेव तुकाराम ।

तुकाराम, तुकाराम ॥

अतः यदव के बगल में इस युग में भी ऋषि महर्षिया का जन्म दिया है । श्री रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर तो इस युग की विभूति हैं ही गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर श्री सुभाषचन्द्र बसु और विपिनचन्द्र पाल भी इसी युग को धर कर गए हैं । राजा राममोहन राय का ता भूला ही नहीं जा सकता ।

इससे आगे असम नेफा त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैण्ड आदि हैं । ये सब हमारी पूर्वोत्तरीय सीमा के प्रहरी हैं । इनका स्मरण और जानिये विनोर कर देनेवाला है । परन्तु ये बड़े सक्क म रहत हैं ।

जिस प्रदेश में हमने कृष्ण भगवान की झांका नगरी देखी थी, उसीमें सोमनाथ का मन्दिर भी है जिसे अभी फिर स बना दिया गया है । परन्तु इसका मह महत्त्व कम बसे माना जाए कि इसी प्रदेश के पोरबन्दर —या सुदामापुरी—में युग प्रवक्तक गांधीजी का जन्म हुआ था और इसी प्रदेश के सावरमती आश्रम में व १५ १६ वर्ष तक रहें थे । और इसी प्रदेश में सरदार पटेल और बुजुर्ग जवान श्री अब्बास तमबजी ने भी काम किया था । यह प्रदेश उतना ही पवित्र है जितना कि काशी, प्रयाग, मदनमोहन मालवीय और जवाहरलाल नेहरू का उत्तर प्रदेश ।

जीवनदायिनी सरिताए

गावा, यमुना नमदा, तोदावरी जोर कावेरी ता अनादि काल से इस भूमि का अनुगृहीत कर रहा है । अपना जीवन समस्त भूमि को वितरित कर उन्होंने उस जीवन्त, स्पष्ट और अभिराम बनाया है । उनका उपकार स्वाकार करके उन्हें प्रणाम कीजिए और उनसे अधिनाधिक वरदान मागिए ।

यह है गांधीजा की कुटिया

कनकता, बम्बई मद्रास आदि बड़े बड़े नगरों को नमस्कार करके अब हम जरा देग के मध्यवर्ती इन दो छोटे छोटे गावा की ओर नजर दौड़ाए—यह है सेवाग्राम । यहाँ इस कुटिया में, अभी अभी तक एक विश्वध्यायिता वाणी सुनाई

पडती थी जिससे पीड़िता का बल मिलता था और अत्याचारी अतमूख हा जाते थे। इसमें उस विभूति का निवास था, जिसने लोह बरूद और परमाणु के अस्त्रों का "ययता सिद्ध करके" उनका तिरस्कार करके, सत्य और अहिंसा के नये तथा क्रांतिकारी प्रयोग से शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में नाम शेष कर दिया। उसका जात्मबन्ध अतुलनीय था दिव्य था। उम विद्वान् मोहनदास करमचन्द गांधी के नाम से पहचानता है।

यह जा दूसरा जाश्रम कुछ ही किलोमीटरों की दूरी पर है, जिससे लगकर मेठ जमनालाल बजाज के पवित्र नाम का गान करती हुई पवनार नदी बह रहा है परधाम नाम से प्रसिद्ध है। यह महात्मा गांधी के आ-यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोबा का जाश्रम है। यहाँ विनोबा ने दीर्घ काल तक उग्र तपस्या की है। यह तपोपूत है।

और यह है उनकी समाधि

एक बार फिर दिल्ली लौट चलें। देखिए, यह राजघाट है। यहाँ तीन समाधियाँ दिखाई देती हैं। इनमें से पहली भवाग्राम की विभूति की है। दिल्ली को इसलिए भी याद रखा जाएगा कि यहीं इस विभूति का हत्या की गई थी। जिसने सारे सत्कार का अहिंसा का पाठ पढाया था उसका प्राण हिंसा से हर गए। भगवान महावीर पर एक गाव क लागे न गुरुवार कुत्ते छोड दिए थे। कुत्ता ने उह जगह जगह काट कर गहन घायन कर दिया था, परंतु उहान कुत्ते पर हाथ नहा उठाया। गाव न सागा का भी क्षमा करके लज्जा और पश्चात्ताप की अग्नि से गुद होने के लिए छोड दिया। भगवान इमा को जय मूली दी गई उसवे पहले ही उहाने आततायिया का क्षमा कर दिया था और परमात्मा से भी उह क्षमा कर देने की प्रार्थना की थी। उहोन प्रार्थना में कहा, "प्रभा, इह क्षमा कर दो, मैं जानते नहीं कि मैं क्या कर रहे हैं। गांधीजी ने परा पर भुके हुए भ्रान्त युवक का अशीर्वाद लिया और फिर उसकी गांधियों से घायल होकर, ह राम। कहकर चला छोड लिया। भारतमाता ने यह भी सहा।

गिप्पा और सायिया की समाधियाँ

दूसरी समाधि दण के प्यार नन्दा राजपति जवाहरलाल नेहरू का है, जिन्होंने

गांधीजी के बाद देश को सभाला, उसकी स्वाधीनता पुष्ट की उसे नव निमाण की दृष्टि दी और उसे उस माग पर अग्रसर कर दिया।

तीसरी अभी गीती ही है। यह एक राजनीतिक सत की है, जा लालबहादुर शास्त्री के नाम से पहचाना जाता है। इमने भारत तथा विश्व में गान्धि स्यापना के प्रयत्न करत हुए तागकन्द में अपनी आहुति दे दी। यह प्रणम्य है।

इसी शहर में हकीम अजमल खा, डाक्टर अंसारी और स्वामी श्रद्धानन्द ने भी अपना चाला छोड़ा था। मौलाना अबुल कलाम आजाद का मकबरा भी बादगाह शाहजहा के लाल किले और जामा मसजिद के बीच में बना है।

सवधम-समभाव का प्रतीक कश्मीर

गुरु नानक की भक्ति स तर, गुरु गोविन्दसिंह की गिन्नाशा से अनुगहीत और लाला लाजपत राय की सवाशा से निखरी हुई पजाव की बीरभूमि को पार करके हिमाचल श्रेणी की उपत्यकाशा में पल हुए इस नन्दनकानन कश्मीर की यात्रा करन ता दुनिया भर से लाग आया करत हैं आप भी क्या न चलें? प्रकृति के इस सौन्दर्य भंडार में जो ये चलत फिरते फूल जम दिखाइ दत हैं यहा के बालक बालिका हैं। य भयानक दुर्दैव के मार हुए हैं। सन १८ वर्षों में यहा दो बालक जाश्रमण हुए। बीच-बीच में भी कुछ भ्रान्त और स्वार्थी लाग न इह चल स रहने नहीं सिया। आश्रमणा में बहुत-से पुष्प मारे गए, त्रिपा का अपहरण हुआ, सम्पत्ति जलाई और लूटी गई। इनमें स बहून-में बच्च अनाथ और बधर-वार हो गए हैं। यह प्रदश भारत के सवधम-समभाव या 'सकनुर राज्य-व्यसस्था का जीवित-आश्रत प्रतीक है। परन्तु ऐसा लाता है कि दुनिया के कुछ राजनीतिन यहा की जनता के कष्टों से आनन्द पान हैं उन गान्धि से नहीं रहने दना चाहत। गरीबी ही यहा की बरकत है।

दुर्देवी लद्दाख

आप पूछत हैं पाकिस्तान से युद्ध ता बाल हो गया, सय मनाए अपनी अपना पुरानी जगहा में हट गई, फिर भी हमारी य मनाए कहा आ-जा रही हैं? मुनिग यह जो कश्मीर के उत्तर का भाग है, इसे लद्दाख कहने हैं। दमपर बहुत सिया में चीन की नजर लगी हुई है। वह रह रहकर इस दुर्देवी श्रेण के हिस्सा

पडती था, जिसमें पीडिता का बल मिलता था और शत्रुचारी अतमुल हा जाते थ । इसमें उस विभूति का निवास था जिसने लोहे वारूद और परमाणु के अस्त्रों की शक्त सिद्ध करके उनका तिरस्कार करके, सत्य और अहिंसा के नये तथा शक्तिकारी प्रयोग में गतिशाली ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में नाम शेष कर दिया । उसका आत्मबल अनुलनीय था दि य था । उस विश्व मोहनदाम करमचल गांधी का नाम से पहचानता है ।

-यह जा दूसरा जाश्रम कुछ ही किलोमीटरों की दूरी पर है, जिसमें लगकर भेठ जमनालाल बजाज के पवित्र नाम का गान करती हुई पवनार नदी बह रही है परधाम नाम से प्रसिद्ध है । यह महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोबा का आश्रम है । यहाँ विनोबा ने दोष काल तक उग्र तपस्या की है । यह तपोपूत है ।

आर यह है उनकी समाधि

एक बार फिर दिल्ली लौट चलें । देगिए यह राजघाट है । यहाँ तीन समाधियाँ दिखाई देती हैं । इनमें से पहली भवाग्राम की विभूति की है । दिल्ली को इसलिए नायाग रखा जाएगा कि यही इस विभूति की हत्या की गई थी । जिसने सारे सत्कार को अहिंसा का पाठ पढाया था उसके प्राण हिंसा से हरे गए । भगवान महावीर पर एक गाव के लोग ने खूबवार कुत्ते छोड़ दिए थ । कुत्ता ने उह जगह-जगह काट कर श्रुत घायल कर दिया था, परंतु उहाने कुत्ता पर हाथ नहा उठाया । गाव के लोग का भी क्षमा करके सज्जा और पश्चात्ताप की अग्नि में शुद्ध होने के लिए छोड़ दिया । भगवान इसा को जय मूली दी गई उसक पहले ही उहाने आततायियाँ का क्षमा कर दिया था और परमात्मा से भी उह क्षमा कर देने का प्रार्थना का थी । उन्होंने प्रार्थना में कहा, 'प्रभा इह क्षमा कर दो, ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं । गांधीजी ने परा पर भुने हुए भ्रात युवक को अशीर्वाद दिया जोर फिर उनकी गाँवियों से घायल होकर, हे राम ।" कहकर चला छोड़ दिया । नारसमाता ने यह भी सहा ।

शिष्या आर साधियाँ की समाधियाँ

दूसरी समाधि देग के प्यारे नेता राजपि जवाहरलाल नेहरू की है जिहाने

गांधीजी के बाद देश को सभाला, उसकी स्वाधीनता पुष्ट की उसे नव निर्माण की दृष्टि दी और उसे उम माग पर अग्रसर कर दिया।

तीसरी अभी गीली ही है। यह एक राजनीतिक सत की है, जो लालबहादुर शास्त्री के नाम से पहचाना जाता है। इसन भारत तथा विश्व में गान्धि स्थापना के प्रयत्न करते हुए ताशकन्द में अपनी आहुति दे गी। यह प्रणम्य है।

इसी शहर में हुकीम अजमल खा, डाक्टर अंसारी और स्वामी धरद्वान न भी अपना चोला छोड़ा था। मौलाना अबुल कलाम आजाद का मकबरा भी बादशाह शाहजहा के लाल किले और जामा मसजिद के बीच म बना है।

सवधम-समभाव का प्रतीक कश्मीर

गुरु नानक की भक्ति से तर, गुरु गोविन्दसिंह की गिन्नाओ से अनुगहीत और लाला लाजपत राय की मेवाआ से निखरी हुई पजाब की वीरभूमि का पार करके हिमाचल श्रेणी की उपत्यकाओ में फले हुए इस न-दनवानन कश्मीर की यात्रा करने तो दुनिया भर से लोग आया करते हैं आप भी क्या न चलें? प्रकृति क इस सौंदर्य भंडार में जो ये चलते फिरते फूल जैसे दिखाई देते हैं यहा के बालक बालिका हैं। ये भयानक दुर्दैव के मारे हुए हैं। गत १८ वर्षों में यहा दो ब्रा-सनिक् आक्रमण हुए। बीच बीच में भी कुछ भ्रान्त और स्वार्थी लोग ने इ-ट-चन से रहने नहीं गिया। आक्रमणों में बहुत-से पुरुष मारे गए, स्त्रियों का अपहरण हुआ, सम्पत्ति जलाई और लूटी गई। इनमें से बहुत-से बच्चे अनाथ और बधर बर हो गए हैं। यह प्रदेश भारत के सवधम-समभाव या 'सैक्युलर राज्य 'यस्यसा' का जीवित-जाग्रत प्रतीक है। परन्तु ऐसा लगता है कि दुनिया के कुछ राजनीतिज्ञ यज्ञ की जनता के कष्टों से आनन्द पाते हैं उन्हे शान्ति से नहीं रहने देना चाहते। गरीबी ही यहा की वरकत है।

दुर्देवी लददाख

आप पूछते हैं पाकिस्तान से युद्ध तो क्या हा गया सब मनाए अपनी अपना पुरानी जगहों में हट गई, फिर भी हमारी ये सनाए कहा आ-जा रही हैं? सुनिष्क यह जो कश्मीर के उत्तर का भाग है इसे लदाख कहते हैं। इसपर बहुत गिना में चीन की नजर लगी हुई है। वह रह रहकर इस दुर्देवी प्रदेश के हिस्सा पर

आक्रमण भी करता रहता है। इसलिए हम इसकी रक्षा के लिए बराबर यहाँ सेना रक्खनी पडती है। यहाँ की जनता बौद्ध धर्मावलम्बी है लडना भिडना नहा जानती। पहाडो और बर्फ के कारण यहाँ उपज भी ज्यादा नही होती, इसलिए गरीबी भी बहुत है।

इसी तरह का गरीब प्रदेश यह है, जिसे हिमाचल प्रदेश कहते हैं। परंतु यहाँ अपनी सरकार है। ये लोग अपना साधारण कामकाज स्वयं देखते हैं। दक्षिण में, मसूर के पास छोटा सा कुंग प्रदेश भी है, जिसके दो सपूत हमारे प्रधान सेनापति रहे है।

आत्मा माग करती है

यह है हमारी भारतमाता—५० करोड हिन्द, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी और यहूदियों की माता, नही ५० करोड भारतीयों की माता। भारत माता ने अपनी सतान की दुबलता, निष्क्रियता दुबुद्धि और पारस्परिक कलह के कारण बहुत दुःख भोगा है। अब वह माग करती है कि

सब हृदय स एक् हो जाओ, सब्बे भाई बन्द जमे रहो।

पूरी शक्ति से और उचित ढंग से परिश्रम करो।

सब की भलाई में हरएक की और हरएक की भलाई में सबकी भलाई देखो।

कतव्य की अधिकार के पहले रखा।

सत्य धाय और प्रेम को अपना गुरुभक्त बनाओ।

दो

यह हमारी विरासत

भारत की भूमि सहज उबरा है, गस्य श्यामला है। परतो भूमि म भी दाने छिटका देने से कुछ न कुछ उपज ही जाती है। परन्तु खान-पानी पाने पर तो वह साना उगलती है। किमान बहद परिश्रमी हैं। वे अपनी फसल की बत्सल पिता क समान सेवा करते हैं, और पकने पर जो कुछ मिल जाता है उससे सतुष्ट हो जाते हैं। अपने शरीर को ताडकर, अपने पेट को काटकर सारे दग का उदर पापण करने वाले य अन्नदाता हमारे स्नेह और आदर के पात्र हैं।

गावो और किसानो का देश

परन्तु विदेशी आधिपत्य के पिछले सौ डेढ सौ वर्षों मे य जितन उपश्रित रह हैं और इनका जा-जो कष्ट उठाने पड है, उनका वणन करना कठिन है। भूमि कानून, जमींदारी प्रथा गावका साहूकार सामाजिक प्रथाएँ, पानी, खाद बीज आदि की दुलभता, अनिश्चित और अनावृष्टि—सभीका काप अकेले इ हें ही तो सहना पडा। स्वाधीनता क बाद स्थिति मे कुछ सुधार हो रहा है फिर भी नगरों और बडे उद्यागा की आर जितना ध्यान दिया गया उतना इनकी ओर नहीं दिया गया। परिणाम यह है कि स्वाधीनता क इतने वर्ष बाद भी हम अपनी जरूरत के लिए पूरा अनाज पदा नहीं कर पाते, और हम अरवा म्पयो का अनाज बाहर से खरीदना पडता है।

व्यक्तिगत रूप मे भारतीय किसान का आदर हुआ हा या न हुआ हा, हम सब किसी न किसी पीढी म किसाना क घर हो जम ये, और हमारे खून मे किसानी भिदी हुआ है। इसलिए आज भी हम सामूहिक रूप म किसानों का गुण गाते हैं, आभार मानते हैं। हमारी सस्कृति और सम्पता भी किसान सस्कृति और सम्पता है त्रिसप्त स्वावलम्बन, स्वाभिमान, अतिथि-सत्कार, उदारता, समपण भाव,

आत्मसतोष, आत्ममयम त्याग और श्रद्धा विश्वास दूध और पानी जस मिले हुए हैं। भारत इतने दीर्घकाल जीवित रहा और भयानक सबटाके आने पर भी दूमरे देगा व समान नष्ट नहीं हो गया इसका मुख्य श्रेय इस सम्पत्ता का हा है।

कला कौशल उद्योग-व्यापार

उद्योग धंधा और व्यापार मे भी भारतीय कुशल माने जाते थे। शताब्दिया पूर्व उनकी होड में टिकने वाला कोई नहीं था। एशिया, अफ्रीका और यूरोप व विभिन्न देशों को जल तथा थल मार्ग से भारतीय माल जाता था। शासक उद्योग व्यापार का प्रोत्साहन देते थे। भारत अपनी समृद्धि व कारण 'स्वर्ण भूमि', 'सोने की चिड़िया' आदि नामों से प्रसिद्ध हो गया था। विदेशों के बहुत-से व्यापारी यहां आकर बस गए थे। उनके बंशज आज भी पाए जाते हैं। पुनर्गाली डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज भी पहले-पहले व्यापारी बनकर ही इस देश में आए थे।

कला-कौशल और ज्ञान विज्ञान आधुनिक सम्पदा व रूप में भारतीयों का मिलता था।

अजंता और एलोरा की गुफाएँ सारे देश में मिर ऊँचा उठाए खड़े हुए मंदिर, तरह-तरह व खड़े-खड़े सर्वांगीण प्राचीन साहित्य—मव पुकार-पुकारकर अपने अपने युग की उन्नति का बखान कर रहे हैं।

विद्या और साधना

ज्ञान व्याकरण, ज्योतिष गणित आदि विषयों में तो सत्सार भारत को अपना गुरु और प्रेरणादाता मानता था। वेदा उपनिषदा पुराणा रामायण महाभारत और महाभारत व ही प्रकरण भगवद्गीता की आर विन्व व मनीषी आश्चर्य भरी दृष्टि से दग्ध हैं। बौद्ध और जन साहित्य की उत्कृष्टता, और गहनता व साध मिली हुई सरलता आश्चर्यजनक है। कासिदास का अभिमान 'गान्धर्व' अब भी विद्वानों के कौतूहल का विषय है।

धार्मिक विवेचना और साधना में विचार और आचार में, भारतीय ऋषि-मनिसा साधु-संता धर्माचार्यों और योगियों व समकक्ष दुनिया भक्तिने महापुरुष

हैं ? जनक युधिष्ठिर अनाक भत हरि जैसे धम परायण राजा और कितनो में हुए हैं ? दूसरी ओर, इसी दग म कसार्द गुरु भी हुए । धम छोट बड व-नीच, शिक्षित अशिक्षित, स्त्री पुरुष, बाल बड सबके लिए है । सब अपना-पनी मर्यादाआ के अनुसार उस समझ सकते हैं उसका पालन बरके अपना और त्त का कल्याण कर सकते हैं । हम निश्चा दी गई है कि जथ और काम की प्ति धम से ही होनी है मोक्ष की प्राप्ति तो धम से हाती ही है । इसलिए धम क न म श्रुति न करो । धम से ही सब काय धमपूर्वक करो ।

अहिंसा विश्व को भारत की विशेष दन है । सत्य का महत्व भी भारत म तना विकसित हुआ उतना अन्य नही हो पाया । इम युग म भी महात्मा धी ने इन दोनों की अनुपम और अपार गभित सिद्ध कर दी है । योग और ध्यान जन और कौनन, पूजन और अचन, यन और योग आदि भी भारत की विशेष न हैं । संस्कृत उसकी 'देववाणी है ।

वधम समभाव

हिंदू धम सब धर्मों के आदि आचार्यों पगम्बरों प्रवतकों का आदर की ष्टि से देखना सिगाता है । बुद्ध, महावीर, ईसा मुहम्मद, जरथुस्त नानक तथा य सिख गुरुओं को ईश्वरीय विभूति मानने म हिंदुओं का सतोप हाता है । मध्य-ाल म सूफी सता ने धम समवय का जा काय किया वह हिंदू धम और हिंदू कृति के अनुकूल पडता था, इसलिए हिन्दुओं न उन मता की उसी तरह अपनाया (सं मुसलमानों या अन्य धर्मावलम्बियों न । उनकी गिना हिंदुओं के जीवन म रोतप्रोत हो गई है । कबीर की वाणी हिंदू मानस म अमर, जमद है । उदाहरण लिए, उनका निम्नलिखित पद हिंदुओं के लिए धम-वाक्य जसा है

दुइ जगदीस कहा त जाय कहू कौन भरमाया ।
अल्ला राम, करीमा बेसा, हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक बनक त गहना, ताम भाव न दूजा ।
कहन सुनन का दुइ कर थापे यक नेवाज यक पूजा ॥
वही महादव वहा मुहम्मद, प्रह्ला आत्म कहिए ।
कोइ हिन्दू कोइ तुरक कहाव, एक जमी पर रहिए ॥
वेद किताब पद के कुतुबा वे मीताना थ पाडे ।

तीन जीवन के चढ़ाव-उतार

वंदा और रामायण के काल में भारत एक था। तब से अब तक वह एक रहा। छोटे-बड़े क्षेत्रों में अलग-अलग जीवाँपतीत करत हुए भी हम सब भारतीय होने का गौरव मानते रहें। भारत एक विराट् राष्ट्र है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य क्षेत्र स्वातन्त्र्य जाति-स्वातन्त्र्य धर्म स्वातन्त्र्य वर्ग-स्वातन्त्र्य आदि सब प्रकार के स्वातन्त्र्य को स्वीकार करता हुआ भी वह चिरकाल से एक राष्ट्र रहा है। विविधता में एकता अथवा अद्वैत उसकी जीवन परम्परा और जीवन दर्शन का आधार है। परन्तु भारत के क्षेत्रीय राजाओं की नीति और शासन व्यवस्था में समय-समय पर जो अच्छा या बुरा परिवर्तन हुआ उससे राष्ट्र का जीवन भी उसी तरह बदलता गया।

उतार का काल

ऋग्वेद कालकी सभा समितियाँ और बौद्धकाल की गणतन्त्र प्रणाली के स्थान पर धीरे-धीरे निरकुल राजतन्त्र अपनी जड़ें जमाता गया। एक ओर हम कौरव पाण्डवों चन्द्रगुप्तमौर्य सम्राट् अशोक चन्द्रगुप्त विन्ध्यादित्य और सम्राट् हर्षवर्धन के नाम इतिहास में हीरो के समान जड़े हुए खिललाई देते हैं, दूसरी ओर महाराज हर्षवर्धन के बाद का दण्डीय काल दृष्टिगत होता है, जिसमें विभिन्न राजा लोग राज-पद और साम्राज्य लोभ के कारण अथवा पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण, एक-दूसरे में लड़ते रहने में ही बह्वर्षीय मानस धर्म और प्रजा के हितार्थ की ओर ध्यान ही नहीं देते थे। उनमें जयचन्द आदि कुछ राजा तो ऐसे भी हुए, जिन्होंने अपने विरोधी भारतीय राजा का जीतने या नीचा स्थान के लिए विदेशी आक्रमणकारियों का भाँसा मंत्रित किया।

तु भारतीय जनता फिर भी सरलता से परास्त नहीं हुई। उमन अपनी

भारतीयता—राष्ट्रीयता—म तो घट्टा लगने दिया ही नहीं, एक दूसरे स अपन सम्बन्ध पूरवत मीठे बनाए रखे। ऐसे अधम राजाआ को उसने क्षमा भी नहा किया। जयबंद जैसे जितने लोगो न दशद्राह किया उन सबको तिरस्कार व पात्र समझा गया और भारतीय भाषाआ मे उनके नाम देशद्रोहियो के पर्यायवाचा बन गए। दूमरी जात, जनता न अपनी गणतन्त्र प्रणाली को भी मिटने नही दिया। छोटे छोटे गावो मे भी तरह तरह की पचायन कायम रही और अपने अपन क्षेत्र के राजनीतिक जाषिक सामाजिक तथा धार्मिक जीवनको सभालती रही। बाहर के दशा स अनेक बार अनेक लोग बलपूत्रक भारत म आए। उनमे से कुछ न महा का सस्कृति और सम्पत्ता व स्थान पर अपनी गस्कृति और सम्पत्ता के पोष रापन के प्रयत्न किए। परन्तु सदिया के प्रवर्ता के बाद भी यहा के गावा तक उनका अधिब असर नही पहुचा। उनकी जीवन व्यवस्था लगभग वसी ही चलती रही। बहुधा एक परिणाम अवश्य हुआ—भारत की सस्कृति और सम्पत्ता के आक्पण म आकर विदेशी लाग अपना विदेशीपन खो बठे, व भारत के अपने नागरिक बन कर रहने लगे, और पूणत यहा के समाज म घुल मिल गए।

परन्तु यह स्थिति सदा तो नही चल सकती थी। देशी राजाओ की सदा वर्द्धित निरहुता और कूप मडूकता तथा बाहर से आने वाला की उग्रता और आक्रमणशीलता का बार बार सामना करते-करते जनता का मनोबल क्षीण होता गया, पुरान जीवन मूल्यो म क्रमश परिवर्तन हाता गया, पारस्परिक सहयोग द्वारा समृद्धि प्राप्त करने के भाग म हतावटें आती गई और, इस प्रकार, क्रूर काल व चक्र म पडकर, जनता नये काय प्रारम्भ करने तथा पुराना का सभालने की वक्ति जीर उत्साह खो बठी।

मन के हारे हार है

मनोबल क्षीण हा जाने पर मनुष्य सब प्रकार की दुबलताआ और बुराइया का शिकार होने लगता है। अपनी रक्षा के लिए दूमरे को सबट म डाल देना, अपन मुख और स्वाय के लिए पराक्रम का भाग छोडकर दूसरा स—कमजोरा स—छोना झट्टी कर लेना, त्याग और आत्मसयम पर आधारित चारित्र्य से विमुख होकर जमे भी हो बने अपना काम साध लेना, केवल अपनी सोचना और दूसरो को परवाह न करना, हार मानकर धम से विरत हो जाना, भाग्य के भरोसे बठ

रहना, दूसरा के मुँह-दुःख के प्रति जड़ बन जाना, अधम अपराधा में निरत हो जाना और, इस सब पर, आत्मा की काच टोच को महसूस न करना, अपने-आप को पुण्यात्मा सिद्धाने के प्रयत्न करना तथा इस तरह के काम को उचित सिद्ध करना—यह सब दुबल मन के व्यक्ति के लिए स्वाभाविक हो जाता है। निरक्रिय राजाशा के राज्यो में और पराधीनता के काल में उच्च तथा मध्यम वर्ग के लोगो में यह सब बुराईया आइ और उनसे छन छनकर कुछ मात्रा में निम्न वर्ग के लोगो में भी पहुँची। परिणामतः, धार्मिक जीवन पाखंडयुक्त बन गया। नये विचारों, अनुसंधान शिक्षा, विज्ञान आदि जीवन पोषक जीवन सवधक और प्रगतिकारी प्रवृत्तियों की ओर से लोगो का मन हटने लगा। ऊँच-नीच का भाव प्रबल हुआ और समाज छोटे छोटे, परस्पर अछूते और कुद घरा में बटने लगा, स्वायत्त मूलक अत्याय तथा अत्याचारा के विरुद्ध आत्मरक्षा का सघन प्रबल हो उठा। छुआछूत का बोलवाला हुआ, अभाव और अभाव का अंतर बढ़ता ही चला गया। स्वायत्त सिद्ध करने वाले शासकवर्ग ने अपना शासन स्थापित और दृढ़ करने के लिए इन परिस्थितियों का पूरा लाभ उठाया।

सात समुद्र पार से

यूरोपियों के भारत में राज्य जमान के प्रयत्न करते समय भारतीय ऐसी दुदसा में प्रस्त हो गए थे कि वे यूरोपियनों को मदद करने के लिए उनकी आर से भारतीयों के ही विरुद्ध लड़ने को तयार थे। उस समय के अनेक भारतीय शासकों ने भारत की ही विरुद्ध उन्हें सहायता दी थी। जा बात यूरोप में कभी नहीं देखी गई थी उस भारत में दसकर पांडिचेरी का फ्रांसीसी गवर्नर झूठ बड़ा आशान्वित हुआ था। उसने अपनी सरकार को सहायता के लिए जो पत्र लिखा था उसमें उसका एक प्रबल तर्क यह था कि भारतीय अपने ही देश के लोगों के विरुद्ध हमारे लिए युद्ध कर सकते हैं और यदि अच्छी ट्रेनिंग दी जाए तो वे हमारे ही बराबर अच्छे सैनिक भी बन सकते हैं। यह हमारा पतन हो या अतीव्रन सघन से उत्पन्न दार्शनिक आवाग यूरोपीय राज्य लिप्सुमान हमका पूरा लाभ उठाया और इसीके बल पर अंग्रेजों ने सारे भारत पर अपना राज्य जमा लिया।

मध्ययुगीन ह्रास की अनेक शताब्दियाँ में मनोबल का जो क्षय हुआ, अगहायता की जो भावना जागी और आत्मसंरक्षण की आवश्यकता की जो अनुभूति हुई

उन तीनों ने मिलकर भारतीया के जीवन में कुछ एसी भयानक बुराईया पग कर लीं जिनसे हमारा सर्वांगीण पतन ता हुआ ही, साथ ही हम अपने ही समाज और देश में एक-दूसरे में अलग होत गए और बाहर क लाग हमसे घृणा करने लग और हम असम्य तथा निचल दर्जे के लाग समझने लगे। हमारा अतीत तो भय या ही उसका गौरव हमन नहीं खाया उससे चिपटे रहकर अघान कट्टरता का अब नम्वन करके हम जीवन की प्रेरणा ग्रहण करत रत। इससे हम जीवित ता रहे परंतु नई और वातनिक दष्टि अपना नहीं सक। फिर अनहायता क कारण हमम आलस्य का विकान हुआ जिसने अकमप्यता गदगी और तरह तरह की गन्दी आदता का जन्म दिया और पुष्ट किया। कट्टरता के कारण हमारा धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक नेतृत्व ध्वंसित और अज्ञानी पडे-पुजारिया तथा पुरोहितों क हाथ म चला गया जिसम जावन रक्षण म सहायता तो मिली किन्तु आवश्यक विकास में अवरोध उत्पन्न हुआ। हम छून अछूत, जाति पाति और अनेकानक सामाजिक प्रयाओ और धार्मिक पाखडों क छाट-छोट घेरों में मिकुडत चने गए तथा स्वामी विवेकानन्द क कथनानुमार 'केवल बटलाई म भगवान का दान करन लगे।' अपने दोषा का न देखकर दूसर के दोषा का बग चढाकर देखने में ही हम मायकता मालूम हान लगी, जिससे अपन और पराय लाग क साथ पाथक्य बटना ही चला गया। प्राचीनता क गौरव और आत्मरक्षा क भाव ने स्त्री जाति क प्रति बहुत अत्याचार कराया। वह असिभित 'सहज अपावन' परदे म घर के अन्दर वन्द और केवल चूल्हे चक्की स बधी हुई रह गई। उनक उद्धार क लिए आधुनिक काल म अनक मनीषिया और महपिया ने आराज उठाई, परन्तु धास्तविक उद्धार तभी आरम्भ हुआ जब महात्मा गांधी न हम देशा में उद्योग गुरू किया। व्यापार म भी वेइमानी आ गई। लाभ या ही बुरी चीज है किन्तु दरिद्र का लाभ तो काई मयादा ही नहीं मानता। भारत दरिद्र हो गया था—घन गिने चुन लागो क पास रह गया था। वे घनी भी पूरे घम भाव से उम अजित नहीं करते थे। अतएव उन घनिका को ठग लने म शायद दरिद्र लोभी कोई पाप नहीं समझन थे। अंग्रेजो के काल म यह बईमानी त्वास तौर से बढी। इसका एक कारण यह था कि अग्रजा न घन का आन्दर बहुत बग दिया। घनिका के प्रति प्रेम भी लोगा का नहीं होता था—या तो घणा हाता थी, या आतक और ईर्ष्या-द्वेष। फिर, जिनक प्रति प्रेम नहीं उनक माय घममय व्यवहार की आवश्यकता क्या

विकसित होती ? प्राचीन गौरव के आधार पर हमारी अहम्भयता की भी कोई सीमा नहीं थी। आज हम इन स्वत्व या 'इंडिविजुएलिटी' कहना पसंद करते हैं। विकास के दूसरे गुण खो देने और फिर भी अहम्भयता का पोषण करने के कारण भी हम एक-दूसरे से और विदेशियों से अलग हात रहे। विदेशी घामको ने हमारी इस दुबलता का मधेष्ट पोषण किया और लाभ उठाया।

अंग्रेजी शासन

विदेशी शासक म अंग्रेज सबसे चतुर थे। उन्होंने साब लिया कि जो भारत इतना गिरा हुआ दिखाई देता है उसकी आत्मा अब भी सबल है अतएव यदि उसे हम अपने बग म न कर लें या विल्कुल बुचल न डालें, तो इस देश म रह न पाएंगे। उन्होंने देखा कि यह कोई माधारण देश नहीं है—सभ्यता और संस्कृति, राजनीति और धर्मशास्त्र, दान और विज्ञान गणित ज्यामिति और चिकित्सा शास्त्र, व्याकरण, साहित्य और कला, सभी म हमारा गुरु बनन योग्य है। हमन भाग्य से ही इसका राज्य पा लिया है और जस ही महा के लोग अपना वनमान मूढ़ता से जाग बस ही हम निवास बाहर करेंगे। इस भय से उन्होंने भारतीयों की मूर्च्छा कायम रहन ही उन्हें सदा के लिए पगु बना देन और अपने बग म बर लेने के उपाय किए।

सबसे पहल भारतीयों को शास्त्रहीन किया गया। बाद म उनके उद्योग धंध नष्ट करके और उनकी सम्पत्ति निचोड़कर उन्हें आर्थिक दृष्टि से दीन और पराव नम्धी, नोकर और मजदूर लकड़हार और पनिहार बना देने का प्रयत्न किया गया। इसके पश्चात उनके मानस को बदलने और शिक्षित भारतीयों को काल अंग्रेज बना देने के लिए अंग्रेजी शिक्षा शुरू की गई जाएक और ता भारतीयों को मन से गुलाम बनानेवाली थी दूसरी ओर अपना शासन चलाने के लिए इस देश से कमचारी तयार कर लेने की थी। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों का मान बढ़ाकर उनमें दम्भ पैदा करके देश का अपनी भाषाभाषा के पढ़िता की उपेक्षा करके और भारतीय रहन-सहन त्योहार वार धार्मिक कृत्या सामाजिक व्यवस्था आदि के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करके उनकी एक अलग जाति बना दी गई। वह जाति अंग्रेज शासक को नकल करना ही अपना धर्म मानकर देश भर म विदेशी सत्ता चलाते तथा उसका सारक्षण करने म जुट गई। वह शेष लोग से अपने-आपको

श्रेष्ठ मानती थी और विदेशी शासन उसके इस दम का पोषण करके उसे अपने हित के लिए अपने हाथ में रखते थे ।

आध्यात्मिक मूल्यों के स्थान पर, जिनसे भारत की जनता को सदबल मिला था शुद्ध भौतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा भी बढ़ती गई ।

इस सबको अपने स्वार्थों के लिए पर्याप्त न समझकर शासक वर्ग ने अलग अलग घम माननेवाले हिन्दुआ, मुसलमाना, ईसाइयो, सिखा, पारसिया आदि में साम्प्रदायिक फूट डाली । प्रान्त प्रांत में भी मनोमालिन्य और विशेष स्वार्थ पदा किए जिससे सघष, परस्पर निंदा और छीना भपटी का बाजार गरम हो गया ।

चार राष्ट्र-भावना में व्याघात

हमारी गवराष्ट्र की भावना और राष्ट्रीय उन्नति में बाधा डालनेवाली प्रत्यक्षत यही राजनीति रही। परन्तु हमारी प्राचीन धार्मिक आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था के ह्रास और सांस्कृतिक दगन के जीवन से पृथक् हो जाने की इसमें कोई जिम्मेदारी नहीं थी, यह मानना सत्य से आर्ये मूढ लेना होगा। यदि हम अपने पूवजा की शिक्षा पर चले हान तो एसा न होता।

यदा-यदा हि धमस्य ग्लानिभवति

प्राचीन साहित्य देखने से स्पष्ट हा जाता है कि हमारा सम्पूर्ण भौतिक और वचारिक जीवन धार्मिक तत्त्वों की नींव पर उभारा गया है। व्याम न महाभारत में दाना भुजाए उठाकर पुकार लगाइ है

ऊध्वबाहु विरोम्येप न च कश्चित् णणोनि माम।

धर्मान् अथदथ कामदथ स धम कि न सेयते ॥

अर्थात् मैं दोनों भुजाए उठाकर पुकार-पुकारकर कहता हू कि जिस धम स ही अय और काम की उपलब्धि होती है उसका संवन क्या नहीं करते। परन्तु गमभ म नहीं आता कि मरी पुकार किसीक भी काना तय क्या नहीं पहुंचती।

वास्तव में धम का सत्त्व इतना मूक्षम है कि उसका पालन के लिए सदा जाग रुक रहना आवश्यक होना है—जो जितना जागरूक रहेगा वह उतना ही उसका पालन कर सकेगा। वह सम्यक जीवन की व्यवस्था और जीवन की सम्यक व्यवस्था, दाता है। उग समझना भी हरणक क दग की बात नहीं। इसलिए उडे समझात रहन के लिए सदा गुदकी पुराहित की श्रुदि मुनिया की, नेता की आवश्यकता होती है। जब ऐस मागदर्शक नहा रहत सब जन-साधारण म

विजित-यविमूढता आ जाती है। यह हमारे राष्ट्रीय जीवन में सग ही दिखाई देता रहा है। जब मागदर्शक नेता अथवा अचतार का प्रादुर्भाव हुआ तब धम की ग्लानि मिटी और उसकी पुन सस्थापना हुई। अर्थात्, जब ऐसा नेता नही रहा तब धम की ग्लानि ही होती रही।

धम का पालन एक एक व्यक्ति का अलग अलग कर्तव्य होता है। उसका उद्भव और विकास भी अलग अलग मनुष्य के हृदय में अलग अलग रूप और अलग-अलग मात्रा में होता है। परन्तु उसके पालन से समस्त सृष्टि का सम्बन्ध होता है। इसलिये धम-पालन का आधार आत्म समय, प्रेम, सेवा, सहिष्णुता, सत्य, अहिंसा आदि ऐसे तत्त्व होते हैं, जो स्वाभाविक बन जाने पर ही मनुष्य को स्थायी सुख प्रदान करते हैं अथवा मनुष्य उनके पालन में अपने प्रति जबरदस्ती महसूस करने लगता है और उनसे थककर उपेक्षा-वृत्ति से काम लेने लगता है। इन तत्त्वों को सदा जीवित और सतेज रखने के लिए भी मनुष्य को नेताओं की प्रेरणा की आवश्यकता हाती है।

नेताओं या मागदर्शकों का इस आवश्यकता या अनिवायता के कारण धर्म-प्राण भारत में धीरे पूजा, व्यक्ति पूजा, विभूति पूजा की भावना इतनी प्रबल हो गई कि वह प्रत्येक सच्चे नेता में भगवान का अंश स्पष्ट देखन लगता है। राजा को 'नर ईश और ब्राह्मण को 'भू देव की उपाधि इसीलिए प्रदान की गई।

य नेता और मागदर्शक मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाते हैं। अध्यात्म साधना और धम साधना परस्परालम्बी तत्त्व हैं। परन्तु अध्यात्म-साधना सब धर्मों के मूल तत्त्वों से सम्बन्ध रखता है किन्ती धम विरोध से बधी नहीं होती। भारतीय जीवन में जब तक अध्यात्म साधना का महत्त्व अधिक रहा तब तक वह सुधी रहा। यह अध्यात्म साधना उही सामाजिक गुणों में व्यक्त होती थी, जिहे ऊपर धम-साधना का आधार बताया गया है। इसमें दुबलता थाने पर हमारे व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन की कडिया भी कमजोर पड़ गई।

वर्णाश्रम-व्यवस्था का हास

भारत की समाज-व्यवस्था में वर्ण और आश्रम की जो व्यवस्था है, भारतीय समाज की उन्नति में उसका योग अमित है। परन्तु धीरे धीरे उसका हास होता

गया। आग चलकर घण-यवस्था न सकुचित जाति प्रथा और अस्पृश्यता को उत्तेजन दिया और आश्रम व्यवस्था अधिकांश समाज से पलायन करनेवाला और धूर्तों तथा पाण्डित्यों का आश्रय स्थल बन गई। इन दोनों का हलाम से एक आर-सौ समाज छोटे छोटे टुकड़ों में बट गया दूसरी ओर उसे सदा मबदा सहज रूप से जो नेता प्राप्त हुआ करते थे उनका अभाव हो गया और समाज धूर्तों तथा पाण्डित्यों के चंगुल में फसता गया, और उसकी आध्यात्मिक उन्नति रुक गई। जो धार्मिक और आध्यात्मिक साधना 'सुख से रहने और दूसरा का सुख से रहने' देना के लिए था वह अब सासारिक जीवन से पृथक् होकर पारलौकिक जीवन मात्र का लक्ष्य बनाकर अपना जाकपण खा धठी। यह समाज की ओर राष्ट्र को एक बहुत बड़ी क्षति हुई, जिससे राष्ट्र का मगनमय संगठन छिन्न भिन्न हो गया।

आर्थिक हलाम

हमारे छिन्न भिन्न हो जाने का एक बड़ा कारण हमारी गरीबी भी है। किन्तु यह अपेक्षाकृत नया कारण है। अंग्रेजों के आने के पहले तक विदेशों में भारत की ख्याति मोने की विदिया के रूप में थी। भारत स्वयं धन उत्पन्न करता था और विदेशों का धन भी व्यापार के द्वारा यहाँ एकत्र ही जाता था। परन्तु यूरोपीय और विदेशी अंग्रेजों के आने के बाद उसका जो गोपण हुआ और उसके उद्योग धंधों को जा हाति पहुँचाई गई उससे, और अंग्रेजी शासन नीति के कारण भारतीयों में आलस्य की असीम वृद्धि हुई और देश उत्तरोत्तर दरिद्रता का शिकार बनता गया।

परन्तु उसकी दरिद्रता का एक बड़ा कारण उसका जनसंख्या में भारी वृद्धि भी थी। अठारहवीं सदी के अंत में भारत की जनसंख्या लगभग १० करोड़ थी। उन समय देश की अपार सम्पत्ति इतनी ही लोगों में बटी हुई थी। १९६१ में यह जनसंख्या (पाकिस्तान की जनसंख्या का छाड़कर जो पहले की जनसंख्या में शामिल थी) ४५ करोड़ हो गई।

जनसंख्या की इस भारी वृद्धि का एक मुख्य कारण भारतीय स्त्रियों के प्रति भारतीय पुरुषों का रुझान होना चाहिए। भारत में स्त्रियों के मातृत्व की प्रतिष्ठा बहुत होने के बाद-माय उनका जीवन पूणत पुरुष के अधीन और घर की चहारदीवारी

के अंदर सीमित था। दूसरी ओर, पहले धन की प्रचुरता हानि के कारण और बाद में धन तथा धंधा दोनों ही न होने के कारण पुरुष घरघुसा बन गया। यद्यपि इस वान के उचित अध्ययन की आवश्यकता है तथापि इस समावना की सरलता में उपेक्षा नहीं की जा सकती कि स्त्रियों और पुष्पों की इस दयनीय अवस्था ने विनोद रूप से मध्यवर्ग में, प्रजोत्पत्ति का बढ़ाया। यदि यह सच है तो परिवार नियंत्रण के अर्थ उपायों के साथ साथ प्रजोत्पादन कम करने के लिए यह भी आवश्यक होगा कि स्त्रियों के लिए घर से बाहर काम करने के अवसरों का विकास किया जाए उन्हें पुरुषों की अधीनता से मुक्त किया जाए और पुरुषों का उद्योग प्रदाम लगाया जाए।

संस्कृति पर विदेशी राजनीति का प्रभाव

भारत में सांस्कृतिक एकता तो सदैव रही विशेषतः इसलिए कि भारतीय जनता न विभिन्नता में एकता का पाठ माता के दूध के माथे सीखा परन्तु विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों में निकट संपर्क सहज नहीं हो पाया आसपास के प्रवेश तक ही सीमित रहा। धर्माचार्यों और सतान समस्त जनता को निकट जान के प्रयत्न बहुत किए। समस्त भारत में बड़े बड़े तीर्थों की प्रतिष्ठा और धर्माचार्यों की यह व्यवस्था कि प्रत्येक हिंदू को अपना जीवन-काल में चारों धामों की यात्रा कर ही लेनी चाहिए ऐसा योजनाएँ हैं, जिनसे भारत के बहुत लोगों का सांस्कृतिक और धार्मिक सम्बन्ध स्थापित होता रहता है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, चण्णभाचार्य आदि के मठा मठों का धंधा प्राचीन मंदिरों, कला व्यापार आदि में भी सम्पन्न बढ़ाने में योग दिया, जिससे समस्त देश की जनता में आत्मीयता की कमी नहीं रही। भिन्न क्षेत्रों के भिन्न राजनीतिक स्वार्थ और आत्मीयता के बावजूद तब तक नहीं आ सका जब तक अंग्रेजों ने अपना साम्राज्य स्थायी करने के उद्देश्य से विभिन्न क्षेत्रों तथा वर्गों में फूट के बीज नष्ट किए। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा से सारे देश का अंग्रेजी भाषा बोलने वाला एक-दूसरे के निकट आया, परन्तु उससे अधिकतर लोग पश्चिमाभिमुख थे भारतीय धर्म और संस्कृति से उनका सम्बन्ध कम था, या नहीं भी था। पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने का जो काम पहले भारतीय धर्म और संस्कृति के आचार पर संस्कृत अथवा देशी भाषाओं के द्वारा होता था, वही धर्म पश्चिमो सम्प्रदाय के

आधार पर अंग्रेजी द्वारा होने लगा। इसके अपने लाभ तो अवश्य थे, परन्तु इसमें जनता का जो सम्बन्ध अब तक चला आ रहा था वह कट गया और नये ढंग के सम्बन्ध राजनीतिक तथा नासनिक विषयों की नींव पर रखे हुए। लोग बदल, सम्पर्क-क्षेत्र बदलना, नासितदायी धर्म अध्यात्म और सस्वृति का मंगल आसन हट गया और उसका स्थान स्वाथमय, सधपमय, विभाजनकारी, कुचक्रमय राजनीति में ले लिया। यह हमारी सास्वृतिक एकता अथवा राष्ट्रीय भावना का खण्डित करने वाला बहुत बड़ा कारण बना।

कौटिल्य और गांधी की दृष्टियाँ

धर्म तथा अध्यात्म की इन मर्यादाओं की अनुभूति और भूतिवाद तथा सूक्ष्म राजनीति के महत्त्व की चेतना सबसे पहले भारतीय सामाजिक विचारकों में कौटिल्य को हुई, जिन्होंने अपने अर्थशास्त्र में राजनीति की प्रधानता प्रतिपादित की और राजा कालस्य कारणम् सिद्धांत का अपनी पूरी बुद्धि तथा दीर्घदृष्टि से सीमा तक उभार दिया। सांसारिक जीवन के लिए शायद यही सिद्धान्त वास्तविक है यद्यपि इसमें स्थायी सुख शांति नहीं है सधप की बहुतायत है और मनुष्य का शारीरिक जीवन दूसरे के लाभ हुए नासन और अनुनासन में रहना पड़ता है। गांधीजी ने इस विषय में कहा है

“मैं राजनीतिक सत्ता को ही साध्य नहीं मानता। वह तो एक साधन मात्र है जिससे जनता अपने जीवन के हर क्षण में उत्पत्ति कर सके। राजनीतिक सत्ता का अर्थ ऐसी शक्ति है जिससे राष्ट्र के प्रतिनिधियों के द्वारा राष्ट्रीय जीवन का नियमन किया जा सके। यदि राष्ट्रीय जीवन इतना पूरा हो जाए कि उसका नियमन आप ही आप होने लगे तो प्रतिनिधियों की आवश्यकता नहीं रह जाएगी। यह स्थिति एक प्रचुड़ अराजकता की हागा। ऐसे राज्य में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना नासन होगा। वह अपना नासन ऐसे ढंग से करेगा जिससे उसका पड़ोसी के जीवन में कोई बाधा न पड़े। इस लिए एक आत्म राज्य में राजनीतिक सत्ता होगी ही नहीं, क्योंकि सर्वसुख काई राज्य ही न हागा। परन्तु जीवन में आदर की मिद्धि कभी नहीं होगी। इसीलिए थोरा ने यह अमर बात कही है कि सबसे अधिक नासन वह है जो सब में कम नासन करता है। — यम दृष्टियाँ, २ जुलाई, १९३१

वास्तव में गलत ढंग की राज मत्ता अनक अनर्थों का मूल है। वह राष्ट्र में दुःख-दय तथा अशांति और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में विग्रह उत्पन्न करती है। उसका रास्त पर रखने का अर्थ है समस्त जीवन की रास्त पर रखना।

शिक्षा और निष्ठा भक्ति

ब्रिटिश शासक की राजनीति भारत में राष्ट्रीय भावनाओं की विराधी रही क्योंकि उनका पापणसे साम्राज्य के चल जान का खतरा था। भारतीय जीवन और परंपराओं के प्रति तिरस्कार उत्पन्न करके अंग्रेजी शिक्षा द्वारा पाश्चात्य सभ्यता का चमक चमक सिखाई, इसमें उन अंग्रेजों को लिये समाज में जिसकी धाक जन-साधारण पर बराबर बढ़ रही थी, भारतीयता के प्रति निष्ठा भक्ति कम होती गई। गांधीजी ने अंग्रेजी शिक्षा के बारे में लिखा है

'विदेशी शासन की अनमानक बुराईया में इतिहास इसे एक सबसे बड़ी बुराई मानेगा कि देश के युवकों पर विदेशी माध्यम लाद दिया गया। इससे राष्ट्र की ऊंचा क्षीण हुई है विद्याधिया का आयु घट गई है वे जन-साधारण से दूर हो गए हैं, शिक्षा गरज्जरी तौर पर महंगी हो गई है। यदि यही तरीका अब भी जारी रखा गया तो नभ है कि राष्ट्र आत्मा का खोबठेगा।'

— यंग इंडिया' ५ ७-२०

अंग्रेज शासकों ने अपना साम्राज्य कायम रखने के लिए फूट डालो और राज्य करा की नीति का जबलम्बन किया। हिन्दुओं और मुसलमानों में उन्होंने विरोध रूप में फूट डालने के प्रयत्न किए परन्तु दूसरे सम्प्रदायों में भी निहित स्वार्थ पैदा करने में कमी नहीं की। फलतः धागे चलकर पाकिस्तान का निर्माण तो हुआ हा किन्तु और तमिल नाग भी स्वतंत्र राज्यों की आकांक्षा करने लगे दूसरी ओर धनी और निधन, किसानों और शहर के निवासियों, ब्राह्मणों और ग्राह्यणों, हरिजनों और सबको शिक्षा के बीच भी उनकी नीति के कारण फूट पड़ गई।

हिन्दुओं और मुसलमानों के भगड़े तो बहुत ही बढ़ाए गए क्योंकि यह सराया था। जब उनमें कहा गया तब उन्होंने मदा यही दुहाई दी कि हिन्दू और मुसलमान तो पुराने शत्रु हैं इसलिए भगड़ कर रहे हैं। परन्तु महात्मा गांधी लिखा है

“क्या हिन्दू और मुसलमान उस समय भी बराबर एक दूसरे से लडा करते थे, जब भारत में अंग्रेजों का राज्य नहीं था, या जब यहाँ अंग्रेजों का चेहरा देखने को नहीं मिलता था ? हिन्दू और मुसलमान इतिहासना ने प्रमाण दे-देकर विस्तारपूर्वक बताया है कि उस समय हम अपेक्षाकृत हेल मेल से रहते थे । नावों में रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान तो आज भी नहीं भगडते । उन दिनों तो वे बिलकुल ही नहीं लडते थे । यह भगडा पुराना नहीं है । मैं तो कहूँगा कि यह अंग्रेजों के आगमन के साथ पदा हुआ है । और जस ही ब्रिटेन और भारत के बीच का यह रिस्ता—यह दुर्भाग्यपूर्ण, कृत्रिम और अस्वाभाविक रिस्ता एक स्वाभाविक रिस्ते में एक ऐसी स्वेच्छायुक्त साभेदारी में परिणत हुआ जो किसी भी पक्ष की इच्छा पर भग हो सकती हो, वस ही आप देखेंगे कि हिन्दू मुसलमान, सिख यूरोपीय, एंग्लो-इंडियन, ईसाई अछूत—सब हिलमिल कर एक मनुष्य जसे रहेंगे । हा, यदि यह परिवर्तन होने वाला हो तो, और जब कभी हो तब ।’

— यंग इंडिया, २४ दिसम्बर, '३१

एंग्लो इंडियन को अंग्रेजों ने विधेय सुविधाएँ देकर अपने हाथ में रखा और भारतीय ईसाइयों के प्रति भी वे बहुधा पक्षपात का व्यवहार करते रहे जिसने दोष जनता में ईर्ष्या द्वेष ता जागा परंतु उनके साथ खुले भगडे नहीं हुए ।

पांच स्वातन्त्र्य चेतना और संघर्ष

इस्ट इंडिया कंपनी के औद्योगिक, व्यापारिक तथा राजनीतिक अत्याचारा से सारा भारत तिलमिला उठा था। क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स के काल में तो अत्याचार इतने बढ़ गए थे कि इंग्लैंड के लोगो को भी उन दोनों पर मुकदमे चलाने पड़े। भारत के देशभक्त इस विषय पर चिन्तामग्न हो गए। उहाने महसूस किया कि देश के कल्याण का भाग एक ही है—विदेशियो को हटाना और शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ में देना। इस सद्य की सिद्धि का पहला उपाय यह तय किया गया कि अपनी सामाजिक और धार्मिक बुराइयो तथा दरिद्रता को दूर करके अपने आपको समर्थ बनाया जाए।

राजा राममोहनराय का कृतित्व

इस दृष्टि से भारतीय स्वातन्त्र्य के प्रथम नेता राजा राममोहन राय थे। वे अरबी, फारसी सस्कृत, अंग्रेजी, बंगला जादि भाषाओं के पंडित, सभी मुख्य धर्मों के ज्ञाता, सामन कार्यो तथा कानून के विचारक, अप्रतिम विचारक और उत्कट समाज सुधारक तथा देशभक्त थे। उनका जन्म हुगली जिले के राघानगर ग्राम में २२ मई, सन् १७७२ (१७७४ ?) को और देहावसान क्रिस्टल के समीप स्टपिल टन ग्रोव इंग्लैंड में २७ सितम्बर, १८३३ को हुआ था। उहाने हिन्दू धर्म से पाठडा और 'सती जती श्रूर प्रथाओं को मिटान का प्रयत्न किया और अद्वैत ब्रह्म की आराधना के लिए एक मन्दिर की प्रतिष्ठा की, 'जो सुयवस्थित, सयत, धार्मिक और भक्तिमय आचरण वाले सब लोगो के लिए दिना भेदभाव क खोल दिया गया। यही आगे चलकर उनके द्वारा प्रवर्तित ब्रह्मसमाज (१८२८) का नेत्र बना। शासन व्यवस्था में सुधार कराने के भी उहाने बहुत प्रयत्न किए। उस जमाने में ही अंग्रेज सरकार ने हिन्दुओं और मुसलमानों में भेद डालने के

“क्या हिन्दू और मुसलमान उस समय भी बराबर एक दूसरे से लड़ा करते थे, जब भारत में अंग्रेजों का राज्य नहीं था, या जब महा अंग्रेजों का चेहरा देखने को नहीं मिलता था ? हिन्दू और मुसलमान इतिहासना ने प्रमाण दे देकर विस्तारपूर्वक बताया है कि उस समय हम अपेक्षाकृत हेल मल से रहते थे । गावों में रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान तो आज भी नहीं भगडते । उन दिनों तो वे बिलकुल ही नहीं लड़ते थे । यह झगड़ा पुराना नहीं है । मैं तो कहूँगा कि यह अंग्रेजों के आगमन के साथ पड़ा हुआ है । और जैसे ही ब्रिटेन और भारत के बीच का यह रिश्ता—यह दुर्भाग्यपूर्ण, कृत्रिम और अस्वाभाविक रिश्ता एक स्वाभाविक रिश्ते में एक ऐसी स्वेच्छायुक्त साझेदारी में परिणत हुआ, जो किसी भी पक्ष की इच्छा पर भग हा सकती हो वैसे ही आप देखेंगे कि हिन्दू मुसलमान, सिख, यूरोपीय, एंग्लो इंडियन ईसाई अछूत—सब हिलमिल कर एक मनुष्य जैसे रहेंगे । हा यदि यह परिवर्तन होने वाला हो तो, और जब-कभी हो तब ।’

— यंग इंडिया , २४ दिसम्बर, '३१

एंग्लो इंडियनों को अंग्रेजों ने विशेष सुविधाएँ देकर अपने हाथ में रखा, और भारतीय ईसाइयों के प्रति भी व बहुराष्ट्रीय पक्षपात का व्यवहार करते रहे जिससे देश जनता में ईश्या द्वेष ता जागा, परन्तु उनका साथ खुले भगडे नहीं हुए ।

स्वातन्त्र्य चेतना और संघर्ष

स्ट इंडिया कंपनी के औद्योगिक, व्यापारिक तथा राजनीतिक अत्याचारा से सारा भारत तिलमिला उठा था। क्लाइव और वारेन हेमिंस्ट्रड के काल में ही अत्याचार इतने बढ़ गए थे कि इंग्लैंड के लोगों को भी उन दोनों पर मुकदमे चलाने पड़े। भारत के देशभक्त इस विषय पर चिन्तामग्न हो गए। उन्होंने महसूस किया कि देश के कल्याण का मांग एक ही है—विदेशियों को हटाना और शासन की बागडोर भारतीयों के हाथों में देना। इस लक्ष्य की सिद्धि का पहला उपाय यह तय किया गया कि अपनी सामाजिक और धार्मिक बुराईया तथा दरिद्रता को दूर करके अपने आपको समर्थ बनाया जाए।

राजा राममोहनराय का कृतित्व

इस दृष्टि से भारतीय स्वातन्त्र्य के प्रथम नेता राजा राममोहन राय थे। वे अरबी, फारसी, संस्कृत अंग्रेज़ी, बंगला आदि भाषाओं के पंडित, सभी मुख्य धर्मों का ज्ञाता, शासन कानून तथा विचारक, अप्रतिम विचारक और उत्कट समाज सुधारक तथा देशभक्त थे। उनका जन्म हुगली जिले के राधानगर ग्राम में 22 मई, सन 1772 (1774 ?) को और दहावसान क्रिस्टल के समीप स्टापिल टन ग्राम, इंग्लैंड में 27 सितम्बर, 1833 का हुआ था। उन्होंने हिन्दू धर्म में पाल्पाडा और 'मती' जैसी क्रूर प्रथाओं को मिटाने का प्रयत्न किया, और अज्ञान का अन्त करने के लिए एक मन्दिर की प्रतिष्ठा की, 'जा सुखस्थित मनन, धार्मिक और भक्तिमय आचरण वाल सब लोगों के लिए बिना भेदभाव के' खोल दिया गया। यही आगे चलकर उनके द्वारा प्रवर्तित ब्रह्मसमाज (1828) का नेत्र बना। शासन व्यवस्था में सुधार कराने के भी उन्होंने बहुत प्रयत्न किए। उस जमाने में ही अंग्रेज़ सरकार ने हिन्दुओं और मुसलमानों में भेद दूर करने

प्रयत्न गुरु कर दिए थे। १८२७ में, अर्थात् उनकी मृत्यु से ६ वर्ष और १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम से ३० वर्ष पूर्व, ब्रिटिश संसद में एक नया 'जूरी कानून' पास किया गया था। उसके द्वारा कानून में भी धार्मिक भेदभाव समाप्त नहीं कर दिया गया। राजा राममोहन राय ने कलकत्ता के अनेक हिन्दू के मुसलमान नेताओं के हस्ताक्षर कराने उसके विरुद्ध संसद के दोनों सदन का एक विरोध पत्र भेजा था। उसका फलस्वरूप जान बूझकर बनाया गया कानून बदला तो नहीं गया, किन्तु एक जोर ब्रिटिश सरकार के हिन्दूओं और मुसलमानों में फूट डालने और दूसरी ओर भारतीय नेता के एकता का प्रयत्न करने का कथा मुलत हो उठी। भारत में अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ कराने में भी राजा राममोहन राय का हाथ था। उनका ख्याल यह था कि अंग्रेजी पढ़कर भारतीय जनता अंग्रेज शासक के रहस्य समझ सकेगी और समय आने पर उसके स्वतंत्रता के प्रयत्न सरल हो जाएंगे। उन्होंने अपनी पहली पुस्तक तुहफत-उल मुवाह उल दीन (अद्वैतवादियों को ताहफा) फारसी में और उसकी भूमिका अरबी में लिखी थी। इससे भी जान पड़ता है कि उन्हें हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने की कितनी चिन्ता थी। वे बंगला में सवाल कौमुदी और फारसी में 'मिरातुल अखबार' नाम के दो पत्र भी निकाले थे जिनके द्वारा राजनीति, साहित्य, इतिहास और विज्ञान के ज्ञान का प्रसार किया जाता था। बंगला भाषा की उत्थिति में उनका बहुत बड़ा योग्य है। बंगाल में स्वतंत्रता सम्बन्धी जागृति

राजा राममोहन राय अपनी राय से कलकत्ते में एक इम्बिंग प्रेस चलाते थे जिसमें महर्षि दत्तेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी। उनका प्रयत्न और सहयोग से हिन्दू कालेज की भी स्थापना हुई थी। यह कालेज राष्ट्रीय जोर प्राप्तकारी विचारों का जन्म देता। इससे अनेक प्रतिभाशाली विद्यार्थियों ने बंगला और अंग्रेजी में भाषा परिवर्तन निकालकर जनता को शिक्षा देने तथा उसमें राजनीतिक ज्ञान और प्रानि की भावनाएँ फलाने का प्रयत्न किया। इन विद्यार्थियों में ताराचन्द्र चक्रवर्ती, दक्षिणारजन मुन्शेपाध्याय, रसिककृष्ण मन्त्रिक रामगोपाल घोष प्यारीचन्द्र मिश्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके निकाले हुए पत्रों के नाम हैं 'दीपाधन', 'पासावपण', 'हिन्दू पायोनिअर', 'दी बेंगल स्पेक्टटर'। इनके अलावा 'बंगाल हारिकर' नामक पत्र में भी वे सांग

बहुत लिखते थे।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पितामह श्री द्वारकानाथ ठाकुर और कविवर क पिता महर्षि दवेन्द्रनाथ ठाकुर ने राजा राममाहन राय के साथ में बहुत याग दिया। पहले तो उनके दाहिने हाथ ही थे, दूसरे ने श्री कंगवचन्द्र मेन के साथ मिलकर ब्रह्मसमाज का ठोस रूप दिया और उसका प्रसार किया। कंगवचन्द्र सन जन्मठा प्रतिभा के धनी थे। यदि उनकी कुछ कमजोरियाँ के कारण ब्रह्मसमाज के मर्यादा में फूट न पड़ गई होती तो आज वह बलान्त द्वारा विभिन्न धर्मों में समन्वय स्थापित करने का बहुत बड़ा माधन होता। फूट पड़ने से दो ब्रह्मसमाज और स्थापित हो गए। यद्यपि एक दूसरे से स्वतंत्र थे और इनके आचारों में अन्तर था। राजा राममाहन राय का ब्रह्म आन्दोलन फूट की दम गिला में टकराकर घायल और कमजोर हो गया।

उन्ही दिना, अर्थात् १८५७ के स्वतंत्रता-युद्ध के वर्षों पूर्व, गिबनाथ गास्त्री नाम के एक सज्जन ने भारत का स्वतंत्र करने का स्वप्न देखा और उसके लिए एक शान्तिकारी दल का संगठन किया। परन्तु यह दल सफल नहीं हुआ और थोड़े ही समय में लुप्त भी हो गया।

महाराष्ट्र में सामाजिक सुधारों पर जोर

जय बंगाल में यह सब प्रवृत्तियाँ चल रही थी उसी समय छत्रपति शिवाजी के महाराष्ट्र में भी आध्यात्मिक सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ का मूत्रपात हुआ था। १८३२ के आमपामवाल गास्त्री जाम्बकर ने माण्डविक दण और मानिक 'शिवगान' नामक सामाजिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। उन्होंने लपन छोटे-से जावन में—३६ वर्ष की आयु में—विधवा विवाह पुनर्धमातर, श्रेणी शिक्षा के प्रचार और पतिताद्वारा आदिका दिना में बहुत काम किया।

१८३४ में मरणात् गोपालराव हरि ने तारु हितवाणी पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। इसके द्वारा स्वयं गोपालराव ने और उनके साथ मिलकर बाल गास्त्री जाम्बकर, दाणोबा पाडुरग तथा डा० भाऊ दाजी ने समाज-सुधार का आन्दोलन जारी से चलाया। इस पत्र ने यह भी आन्दोलन किया था कि भारत में ससद की स्थापना की जाए और भारतीयों का उमर सन्स्य बनाया जाए। परन्तु इनकी सबसे बड़ी और स्मरणीय विशेषता यह थी कि इसमें विष्णुबुआ

ब्रह्मचारी नाम के एक विचारक ने 'सुखदायक राज प्रकरण नीपक' से प्रकाशित एक लेख में समाजवाद या साम्यवाद का प्रतिपादन किया था। संभव है, टामस मूर की 'यूटोपिया (आकाश कुसुम)' पढ़कर उनमें विचार उदित हुए हों परन्तु उन्होंने अपने विचारों को बड़े प्रभावशाली ढंग से पेश किया था।

महाराष्ट्र कट्टर हिन्दू धर्म का गढ़ था। उसमें अभी अभी हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर एक साम्राज्य का उदय देखा था और वह उमक पुन अस्त हो जाने से सतप्त था। ऐम समय पर प्रचलित धार्मिक प्रथाओं तथा रूढ़ियों में परिवर्तन या सुधार की बात करने में भी सार समाज का रोप सिर पर लेने का खतरा था। परन्तु बिना सुधार किए राष्ट्र को मजबूत भी नहीं बनाया जा सकता था। इसलिए राष्ट्र को मजबूत बनाने का अंतिम लक्ष्य बनाकर दादोबा पांडुरंग ने १८४० में सामाजिक सुधार के लिए एक गुप्त संस्था स्थापित की जिसका नाम था 'परमहंस मंडली'। इसका प्रयत्न काम था जाति पाति को तोड़ना विधवा विवाह को प्रोत्साहन देना और मूर्तिपूजा से लोगों को विरत करना।

स्वतंत्रता युद्ध का पूवाभास

एक ओर जब सुधार के नाम पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्र का सगठन करने और अंततः भारत में ब्रिटिश राज्य को नामनेप कर देन के ये प्रयत्न हो रहे थे, उसी समय देश के विभिन्न भागों में सगस्त्र शान्ति या विद्रोह का तयारिया भी की जा रही थी। फलतः १८२४ तक सहारनपुर, दिल्ली, मुरादाबाद आदि के निकट अनेक छोटे सगस्त्र विद्रोह हुए। १८२६-२७ में उमाजी नायक के नेतृत्व में पूना में, १८३१-३३ में बिहार के कोल चोगा में १८४४ में सावत वाढी राज्य में और १८४८ में कागा जमवार तथा दानापुर में भारी विद्रोह हुए। विमाना में भी इसके साथ ही असताप फल रहा था और वे भी विरगिया को मार भगाने की घात लगाए हुए थे।

जन साधारण में भी असतोष की कमी नहीं थी क्योंकि उद्योग धंधे मष्ट हो जाने से वे दरिद्रता से कराल पाग में पड़ गए थे। जब अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में व्यापार शुरू किया उस समय भारत अमित समृद्धशाली था सोने की विद्रिया माना जाता था परन्तु कंपनी के राज्य के अंत में, और ब्रिटिश सग्राणी के राज्य के पहिल कुछ वर्षों में उसके आधे से ज्यादा लोग भूखो

मरते थ। सन १८७६ म हैरिंगटन नाम के किसी ब्यक्ति ने इलाहाबाद क 'पायोनियर' पत्र म लिखा था 'दग के ६० प्रतिगत लाग ऐसी भयानक दरिद्रता म जकड हुए हैं कि यदि वे बच्चा मे मजदूर करे कर गुजारा न करे ता हर परिवार के कुछ लोग का भूखा मर जाना पडे।' इसके अलावा, जनता 'मुधारा से भी नाराज थी। अंग्रेजा न भारत की परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को भग करके उसक स्थान पर कोई नई व्यवस्था स्थापित नहीं की थी, जिसस सारे दग का सामाजिक जावन अस्तव्यस्त हा रहा था। काल माक्रम न ८ अगस्त, १८५३ क 'यूनाक हरल्ड' म एक लेख लिखकर कहा था

“भारत के विजेताओं म अंग्रेज सबसे पहले थे, जा हिंदुआ से अधिक उन्नत थे। इसलिए हिंदू सभ्यता का उनपर कोई प्रभाव नहीं पडा। उन्होंने उनक अपने सगठना का भग करके, दगी उद्योगा को नष्ट करके और उनके समाज म जो कुछ भा महान और उन्नत था उस सबको चौपट करके उनकी सभ्यता का विनाश कर दिया है। भारत मे उनके शासन की क्या हमसे ज्यादा कुछ नहीं बताती।”

जनता असंगठित थी। अंग्रेजी पडे लिखे नेताओं का उसपर कोई प्रभाव नहीं था। इसलिए प्रभावशाली लाकनताओं के अभाव मे वह अशिक्षित और अध शिक्षित पडे-मुजारिया, राजाआ, नवाब और धनिकों के कहने पर हा चलती थी। जब राजाआ और नवाब को उनके अधिकारा और सम्पत्ति स वचित किया जाने लगा तब उसका रोष और भी भडक उठा।

भारतीय सनिक और सरकारी कर्मचारिया म भी अमताप फल रहा था। उनक साथ निम्न बग के लोगा जसा व्यवहार किया जाता था और उह ऊचे तथा अधिक बतन के पद पान का अवसर नहीं दिया जाता था। सनिको का देग के अंदर और बाहर कहीं भी युद्ध के लिए भेज लिया जाता था। एक बार बंगाल की एक टुकडा ने ब्रह्मदेश जान से इकार कर दिया। इसपर सारी टुकडी का गोलिया स उठा दिया गया। बाद म यह कानून बना दिया गया कि कोई सनिक आदेश मिलन पर कही भी जान स इकार नहीं कर सकता।

नेपाल मे तो अंग्रेजा को पर रखन का मौका ही नहीं दिया गया। वहा एक कहावत प्रचलित हा गई थी, 'पहले ब्रिटिश आता है फिर बाइबिल आती है, बान म बेयोनेट (सगीन) आ जाती है।'

छह

महापुरुषो का युग और नये प्रयत्न

स्वातंत्र्य युद्ध प्रत्यक्षत तो असफल ही गया, परन्तु वह एक नये अधिक प्रबुद्ध और अधिक मगठित स्वातंत्र्य-युद्ध का बीजवपन कर गया। यह युद्ध धार्मिक सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक—सभी स्तरों पर लड़ा गया। इसका मूलमंत्र था—अपने अतीत गौरव को सभाला, धार्मिक पाखंडा और सामाजिक बुराईया को निकालकर जीवन को शुद्ध और सशक्त करो अप्रेजों की विद्या सीखकर शासन पर अपना अधिकार करते जाओ और उपयुक्त समय आने पर विन्गी सत्ता को अधःचक्र दे दो।

राष्ट्र को इन लक्ष्य की ओर अग्रसर करने के लिए स्वातंत्र्य युद्धके बाद के काल में नेताओं का अभाव नहीं रहा। वास्तव में इस काल में जितने महान नेताओं का उदय हुआ उतने शायद किसी भी अन्य काल में एक साथ पदा न हुए होंगे। इस काल की विशेषता यह भी थी कि प्रत्यक्ष राजनीतिक संग्राम कुछ समय के लिए साधारण जनता के हाथ से निकलकर पश्चिमी विद्या पर अधिकार प्राप्त नेताओं के हाथ में चला गया जो जनता की आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं का अध्ययन करके उन्हें प्रभावशाली ढंग से प्रकाशित करते थे और उनकी पूर्ति के लिए वैधानिक ढंग में सघष्य करते थे। उनका यह कार्य भावी सघष्य की नींव डालने और उसे मजबूत करने का था।

परन्तु इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि जनता के सामने कोई सघष्य काय रहा ही नहीं था। शुद्ध राजनीतिक और शासनिन आन्दोलन का उभारने और अग्रगन्थ देनेवाला धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक अभियान भी इसी काल में आरम्भ हुआ था। मध्य युग के सत्ता के समान इस युग में भी अनेक सत्ता ने जन्म लेकर सार भारत में पुनरुत्थान की आवाज उठाकर जन साधारण को एक सामान्य लक्ष्य प्रदान किया था जिससे समाज जीवित रहा, पुष्ट हुआ और सार

ऊँचा उठाकर खड़ा रहने योग्य बना।

यही युग था जब कि अंग्रेज शासक ने हिन्दुआ और मुसलमाना मफूज डालने का चक्र पूरे जोरों से चलाया, जो आगे चलकर रहा ही नहीं और जिम्का अन्तिम परिणाम लाखा हिंदू मुसलमाना के रक्त पर भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

ब्रह्मसमाज का विस्तार और काय

राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज (१८२८) ने आगे चलकर धार्मिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान का काम किया। उसका पभाव बंगाल के बाहर भी दूर दूर तक पहुँचा और उससे हिन्दू समाज को एक नवजीवन की दृष्टि मिली। स्त्रियाँ को समाज के अत्याचारा से मुक्त होने का अवसर मिला और विविध धर्मों में समन्वय का माग प्रगस्त हुआ।

ब्रह्मसमाज का आधार ब्रह्मवाद अथवा अद्वैत था, और उसमें मूर्तिपूजा का निषेध था। सब धर्मों के लोग उसके मंदिर में आ आकर उपासना करने लगे थे।

कमलचंद्र सनन १८६७ में उसका विस्तार प्रायनासमाज के नाम से प्रम्ब में किया। वहा महादेव गोविन्द रानडे तथा डा० रामकृष्ण गापाल भाडारकर जैसे मनापिया ने उसे अपनाया और बढ़ाया। परन्तु प्रायनासमाज ने सामाजिक सुधार का ही अपना मुख्य कामक्षेत्र माना। रानडे स्वयं एक उत्कट समाज सुधारक थे। उन्होंने विधवा विवाह को बहुत प्रोत्साहन दिया था। भाडारकर सस्कृत भाषा और हिंदू धर्मशास्त्र आदि के प्रकाण्ड पंडित थे।

लोकमान्य तिलक का उदय

रानडे की प्रेरणा से पूना में सावजनिक मभा के नाम से एक मस्था तरा तरह का सेना काय करनी थी। १८७६ में लोकमान्य तिलक ने अपनी शिा समाप्त कर पूना के सावजनिक जीवन में पदापण किया। आगरकर के स मिलकर उन्होंने राष्ट्रीय शिा के प्रसार के लिए यू इंग्लिश स्कूल की स्थाप की (१८८०) और १८८४ में डेक्कन एजुकेशन सोसायटी की स्थापना करके उस अधीन उक्त स्कूल को 'कापुसन कालेज' में परिणत कर दिया। इन सस्था

ने युवकों में जागृति और देश प्रेम पैदा करने का बहुत काम किया। परन्तु यह लोकमान्य के सतोंप के लिए काफी नहीं था। उन्होंने तो स्वराज्य प्राप्ति को अपना जीवन लक्ष्य बनाया था, “स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।” अतः जनता में जागृति फैलाने के लिए उन्होंने आगरा के सहयोग से मराठी में ‘केसरी’ और अंग्रेजी में मराठा पत्र निकाला (१८८१)। उनके संपादन में केसरी बहुत शक्तिशाली पत्र बन गया। उसने महाराष्ट्र में अभूतपूर्व जागृति फैलाई।

ऋषि दयानंद और आर्यसमाज

इसी बीच काठियावाड़ के मोरवी राज्य में ऋषि दयानंद सरस्वती का जन्म हो चुका था (१८०४)। लगभग ४० वर्ष की आयु में उन्होंने विद्याध्ययन पूर्ण करके वैदिक धर्म के नव सदश का प्रचार करना शुरू किया। वे मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा, धार्मिक और सामाजिक पाखंडों तथा जन्मसिद्ध जाति पारि के विरोधी थे। विधवा विवाह तथा स्त्रियों की उन्नति को प्राप्ति के मानते थे कि वेद ही परमेश्वरीय धर्म के ग्रंथ हैं। वे सब धर्म ग्रंथ मनुष्या के रचे हुए हैं। उनके इस तर्क और प्रचार से हिंदू समाज का बहुत बल मिला। मृत्यु के अन्वेषण और पालन पर उनका बहुत जोर था।

अपने इन आदर्शों की पूर्ति के लिए उन्होंने १८७५ में बम्बई में और दो वर्ष बाद लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना की। बम्बई में उन्हें महादेव गोविंद रानडे का सहयोग प्राप्त हुआ। पंजाब में आर्यसमाज ने सबसे ज्यादा काम किया, परन्तु वर्तमान उत्तरप्रदेश भी उससे कम अनुगृहीत नहीं हुआ। जिस काल में ऋषि दयानंद ने सारे देश में धूम धूमकर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया उसमें प्रत्येक प्रकार का प्रातिकारिक कार्य राजनीतिक क्रांति की आकांक्षाओं को पुष्ट करने वाला होता था। दयानंद ने अपने बाल के अर्थ ऋषि मनीषिया के समान पश्चात्त्य सभ्यता की चर्चा-चर्षा और विकृत-व्यविमूढता में पड़े निराश और आत्मनाशित भारत को उसके मूलभूत मौर्य की चेतना कराई। पंजाब और उत्तरप्रदेश में उस समय और उस काल में राजनीतिक नेताओं तथा कार्यकर्ताओं का उदय हुआ उनमें से अधिकतर आर्यसमाज के पालन में ही भूलकर बड़े हुए थे। अपने जमाने में लाला लाजपत राय उसने सबसे बड़ना और मवधक

ये। स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हमराज भी आर्य समाज व महान् सन्मन का वषघार थे।

हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का आग्रह

हिन्दी का नार भारत की नामाग्र भाषा बनाने का स्वप्न सबसे पहले राजा राममाहन राय ने दया था। उन्होंने अंग्रेज़ी, मसूत और ज़रबी फारमा के अच्छे-अच्छे प्रया का अनुवाद हिन्दुस्तानी में करन का मनोरथ बाधा था। परन्तु वे इसे पूरा नहीं कर सक। बाद में के. ए. व. सेन ने हिन्दी का राष्ट्रभाषा बनान की आवश्यकता पर जोर दिया। परन्तु उस राष्ट्रभाषा का रूप दन का ठोस प्रयत्न सबसे पहले श्रुति दयानन्द ने किया। व स्वयं जन्म से काठियावाडी थे। उनकी मानभाषा काठियावाडी गुजराती थी। परन्तु उन्होंने जपन सब प्रथम हिन्दी में लिखे। उन्होंने कहा था 'दयानन्द की आशंका वह दिन देखना चाहती है जब कदमीर से कल्याणुमारी तक और अटक से कटक तक खनारी अक्षरों का ही प्रचार होगा। मैंने भारत भर में एका भाषा का प्रचार करन के लिए ही अपने मारे प्रथम हिन्दी में लिखे हैं।' इस स्पष्ट है कि व सार भारत की भाषाओं के लिए नागरी लिपि का भी प्रचार करना चाहत थे।

उन्होंने अपने जीवन और अपनी वाणी से चरम पुरुषार्थ तथा उच्च और खरे चारित्र्य की गिशा दी। दुभाग्यवश उन्हें ५६ वष की अवस्था में जोधपुर के महाराजा का वध्या ने उनका ही रमोदय से विपत्ति ला दिया जिससे उनका गरीर उबलन पाया। १८८३ का शिवाली के दिन प्रणव मंत्र का उच्चार करत-करत उन्होंने अपना बोना छोड़ दिया। मृत्यु से पूर्व रसोदय का क्षमाकर, भाग जान के लिए उन रूपये दन हुए उन्होंने कहा था "इस समय मरन से मेरा काम अचूरा र गया। तुम नहीं जानत कि इसमें वाकटित की कितनी बड़ी हाति हुई है।

श्रीरामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ

श्रुति दयानन्द के जन्म के १० वष बाद वंगन में एक अलौकिक विभूति का जन्म हुआ जो श्रीरामकृष्ण परमहंस के नाम से विख्यात हुई (१८३४-१८८६) श्रीरामकृष्ण अधिप पद लिखे नहीं थे। कठोर साधना द्वारा उन्होंने शिष्य स्फूर्ति उपाजित की और ससार को वेदान्त का जीवनदाया सदा सुनाया। जिस समय

पश्चात्य सभ्यता और ईसाई धर्म की चमक दमक से शिक्षित बंगालिया की थक हिंदू धर्म पर से डिगती दिखाई देती थी और सारा दश निराशा की गल में पड़ हुआ 'क्या सही, क्या गलत की गुत्थी मुलभाने में विफल हो रहा था, उस समय श्रीरामकृष्ण ने हिंदू धर्म तथा वेदान्त की दिव्य ज्योति दिखाकर उसके मानस का आलोकित किया। उन्होंने अनेक धर्मों का पालन करके यह निष्कर्ष निकाला था कि सब धर्म एक ही परमात्मा की ओर से जानेवाले भिन्न भिन्न मार्ग हैं, और वे विभिन्न नामों से उसी एक परमात्मा की उपासना करने का संदेश देते हैं।

उनके देहावसान के पश्चात् उनसे उतने ही अलौकिक शिष्य स्वामी विवेकानन्द (१८६२-१९०२) ने विश्व भर को भारत की ओर हिंदू धर्म की महत्ता का परिचय कराया। उन्होंने घोषणा की कि वेदांत ही सर्वश्रेष्ठ धर्म और दर्शन है और कभी न कभी सारा विश्व उसे स्वीकार करने को बाध्य हो जाएगा। उनका वेदांत केवल बौद्धिक सिद्धांत तक सीमित नहीं था। उन्होंने प्राचीन भारतीय दर्शन का आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के साथ समन्वय करने का प्रयत्न किया और श्रीरामकृष्ण मठ की स्थापना करके उसके सत्यासी सदस्यों का दरिद्रनारायण की सेवा करने की प्रेरणा दी। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से भारत की स्वतंत्रता और उसके पुनर्निर्माण का समयन करके दशभक्ता को भी बहुत प्रेरणा दी। वे राज्य और समाज में शान्ति चाहते थे परन्तु उसका उचित साधन आध्यात्मिक उन्नति और सांस्कृतिक बल को मानते थे। वे अपने आपको समाजवादी कहते थे। उन्होंने कहा था 'समाज के सभी व्यक्तियों को धन विद्या और पान उपाजित करने का समान अवसर मिलना चाहिए।

इसी प्रकार का काय स्वामी रामतीर्थ ने भी केवल ३३ वर्ष के छोटे-से आयुष्य (१८७०-१९०६) में बहुत प्रभावशाली ढंगसे किया। पंजाब में जन्म लेकर और समस्त विश्व में भ्रमण करके उन्होंने विरवात्मा और जीवात्मा जड़त्व की अनुभूति कराकर मनुष्य की गति जागृत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने सद्ग किया

स्वर्ग की क्या मजाल कि इक जन्म कर सब ।

तरा ही है स्याल कि पायल हुआ है तू ॥

एनीबेसेट और थियासफी

जायममात्र के निमंत्रण पर मादाम बल्वस्की (रूस) और कनल एच० एल०

गालफॉट (अमेरिका) ने आन्तर अडयार मद्रास में थियोमाफिकन सोसायटी की स्थापना की (१८७६)। हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान ही इस सोसायटी का भी उद्देश्य था, परन्तु यह अपना प्रचार-कार्य आधुनिक यूरोपीय ढंग से करती थी। १८६३ में श्रीमती एनी बेसेंट के भारत आ जाने पर उनके नेतृत्व में इसका काम बहुत जोर से चला। उत्तर भारत में काशी इसका केन्द्र बना। वहाँ इसकी थीर से सेंट्रल हिन्दू स्कूल की स्थापना की गई। नावादा में सेंट्रल कालेज में परिणत हो गया। इसी कालेज को आगे चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय का मुख्य कालेज बनाया गया। थामनी एनी बेसेंट मानती थी कि प्राचीन हिन्दू धर्म को पुनर्जागत किए बिना भारत में नवजीवन का संचार करना संभव नहीं है। इसीलिए बनारस के स्कूल और कालेज के साथ और बढ़ाकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम में भी हिन्दू धर्म जोड़ा गया। सोसायटी ने आधुनिक शिक्षा प्राप्त और पश्चात्य जीवन-शैली पसन्द करनेवाले हिन्दुओं में स्वधर्म के प्रति गौरव उत्पन्न किया और विद्वानों को भी हिन्दू धर्म तथा सस्कृति की महानता का परिचय कराया।

राजद्रोह की चिंगारिया

इस प्रकार जब चारा और धार्मिक तथा सामाजिक पुनरुत्थान के प्रयत्न में राष्ट्र संगठित और जागत हो रहा था और गिभित भारतीय हरे भरे भविष्य के मुनहून स्वप्न देखने लगे थे उस समय अधिकतर जनता भूख और बेकारी से कराह रही थी। उद्योग घटा और कृषि की दुर्दशा और बरा में लगातार बढ़ि होती जाती थी। १८७५ में युवराज भारत आए परन्तु जनता को कोई राहत नहीं दी गई। उलट, कानून कड़े कर लिए गए। १८८७ में महारानी विक्टोरिया के भारत की सम्राज्ञी की उपाधि ग्रहण करने पर दिल्ली में ता बड़े ठाटघाट सार्वक दरबार किया गया, परन्तु मद्रास में और महाराष्ट्र आदि में बहुत भयकर अकाल में अगणित जनता काल-कवलित हो रही थी। उसी समय देशी भाषाओं के पत्रों का मुह बन्द करने के लिए एक नया प्रेस कानून बना दिया गया था। इस कानून के अनुसार भारतीय भाषाओं के पत्रों के लिए आवश्यक था कि या तो वे ऐसा कारनामा लिखें कि हम सरकार के विशद भावनाएँ भडकानेवाले और विभिन्न वर्गों, जातियों तथा धर्मों के लोगों के बीच द्वेष फैलानेवाले हैं।

छापेंगे या सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी का पहल अपन प्रूफ दिसाए। लॉ लिटन ने इस कानून को पास कराने समय कहा था कि सरकार भारतीय भाषाओं के पत्रों का राजद्रोही रूख बहुत बरदाश्त कर चुकी। 'पत्रों की स्वतंत्रता तो उन लोगों के लिए है जो उसे अपनी योग्यता से उपार्जित करें और बुद्धिमत्तापूर्वक उसका उपयोग करें वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसकी जाखें मूत्कर पूजा की जाए।' इससे स्पष्ट मालूम होता है कि जिसे अग्रज सरकार राजद्रोह समझता थी उस प्रकार की भावनाएँ उस समय पत्रों द्वारा भी फलाई जा रही थीं। उन सब बातों के अलावा अग्रज लोग भारतीयों के साथ ऐसी अपमानजनक बर्ताव करने थे, जिसमें जातिभेद स्पष्ट दिखलाई पड़ता था। भारतीयों का ऊँची नौकरियाँ भी नहीं दी जाती थी। अपन जमाने में राजा राममाहंन राय का एक मुँगी की नौकरी तो करनी ही पड़ी थी इस जमाने में भी सर सयद अहमद जैसे लोगों को बहुत छोटी नौकरी से अपना जीवन आरम्भ करना पड़ा।

काँग्रेस का जन्म पहला अधिवेशन

धीरे धीरे असतोष दलना बढ़ता गया कि सारे देश में लागू किए से नान्ति की याजनाएँ बनाने लगे। छोटे छोटे गुटों में संगठित होकर उन्होंने सत्सत्त्व इकट्ठा करना शुरू किया। काँग्रेस का संस्थापक श्री ऐलन जार्ज वियन ह्यूमन नामक जर्मन था। यह बंधी हुई ३०,००० लोगों की रिपोर्टें दली थी जिनसे मालूम होता था कि किसी भी समय ये छोटे छोटे गुट गूँ-गूँ कर सकते हैं और यदि यह योग्य नेता मिल गए तो बड़े कामों पर इनका संगठन भी हो सकता है।

श्री ह्यूमन ब्रिटिश साम्राज्य का हिन्दी भाषी था ही, परन्तु वह भारत का भी हिन्दी चाहता था। इसी भावना में उन्होंने लाड रिपन की सहायता भूमि में और बाद में लाड डफरिन की कठनीति में आकर १८८५ के दिसम्बर में अगिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। यास्तद्विक उद्देश्य यह था कि इनके द्वारा भारत का अंग्रेजी पट्टे तिरहे और विचारणीय नेता बंध में एक बार अपना सम्मान करके भारतीयों की आकांक्षाओं और परिस्थितियों पर विचार करेंगे जिससे सरकार का अपना शासन स्मिन्ध रूप में चलाने में मदद मिलगी। लाड डफरिन की कठनीति का समालोचन करते हुए एना अनुमान होता है कि वह इस मस्या का अपना हाथ भी एसी एक कठनुतनी बनाता चाहता होगा, जिसकी मदद से वह देश का

नाडां पर सदब हाथ रख सके। परन्तु यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ, और दूसरे वष म ही वह सरकार का काय नाजत बन गई।

कांग्रेस का पहला अधिवेशन २८ सितंबर १८८५ को बम्बई की गोकुलदास जेजपाल पाठशाला म हुआ। उनम जा ताग शामिल हुए थे उनका विचार करते हुए मालूम हाता है कि उस समय भारत म पश्चिमी विद्यासे अनुगहीत छोटी के लोगो की कोढ़ कमी नहीं थी और उनम से प्रयत्न बडो म बडी राजनीतिन आर्थिक सामाजिक या धार्मिक जिम्मेदारी वहन कर सकता था। इन सबके निकट सम्भव मे ज्ञान की दृष्टि स कांग्रेस की स्थापना उन समय क शासका के लिए सहायक होने क बदल एक सिर दद बन गई। जो महान व्यक्ति उसम शामिल हुए थे उनमे से कुछ क नाम य हैं

श्री ऐतन बाकेवियन ह्यूम चिमला, उमेगचन्द्र बनर्जी (अध्यक्ष) और नरेंद्रनाथ सन, कलकत्ता, वामा सदाशिव आपट और गापाल गणेश आगरकर पूना गंगाप्रसाद वर्मा, लखनऊ, दादाभाई नौरोजी, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलग, फीरोजगान्ध मेहता, दीनाना एदुलजी वाण्छा बहरामजी मलाबारी, नारायण गणेश चन्दावरकर, बम्बई पी० रगया नायडू (अध्यक्ष महाजन सभा, मद्रास), एम० सुब्रह्मण्य एयर, एम० वीर राघवाचाम मद्रास, पी० केशव पिल्ले, निर-अनंतपुरम। इनक अलावा ये लोग प्रतिनिधि नहीं थे, परन्तु अधिवेशन म उपस्थित थे—दीवान बहादुर भार० रघुनाथ राव, डिप्टी कलेक्टर मद्रास, महादेव गोविन्द रानढ कोन्मिल क सदस्य और जज पूना साला वैजनाथ, आगरा प्रोफेसर के० सुन्दररमण और रामकृष्ण गापाल भाडारकर। ज्ञानप्रकाश, मराठा केमरी, नव विभाकर, इडियन मिरर, नमीम, हिन्दुस्तानी ट्रिम्पून, इडियन यूनि-यन, स्पेक्टेटर, इदुप्रकाश हिन्दू क्लेमेंट आदि प्रसिद्ध पत्रा के संपादक भी अधि-वेशनम शामिल थे।

पहले अधिवेशन म ६ प्रस्ताव पास हुए थे। उनम भारतीय जनता की आकांक्षाएं और मांगें व्यक्त की गई थी। भाषण बहुत जारदार हुए थ। बस इतन स हा सरकार क बान खडे हा गए और उसने उसका विरोध शुरू कर दिया। यह विरोध हिन्दू मुसलमाना म फूट डालने म विकसित हुआ।

सात

कुछ शिक्षित मुसलमानों की प्रतिक्रिया का रहस्य

मुस्लिम राज्य का अन्त हो जाने का कारण मुसलमानों के मन में अग्रजों की प्रति द्वेष था ही, जब फारसी को सरकारी भाषा के पद से हटा दिया गया तब यह द्वेष और भी बढ़ गया। वे अग्रजों की शिक्षा और पादचात्य सभ्यता का विरोध करने लगे। अग्रज सरकार इससे अपरिचित नहीं थी। वह मुसलमानों के प्रति सतक दृष्टि रखती थी। दाना ओर के विचारों का परिणाम यह हुआ कि १८५७ में अवसर आने पर मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ मिलकर ब्रिटिशों का खदेड़ देने का जी-तोड़ प्रयत्न किया। इस युद्ध में विफल हो जाने पर उन्हें असीम निराशा हुई।

मुसलमानों की प्रतिक्रिया

धीरे धीरे इस निराशा की प्रतिक्रिया अग्रजों की ओर से हिन्दुओं का ओर मुन्ती गई। इसका एक बहुत बड़ा मनोव्यतिकारण था। मुस्लिम मुल्ला मौलवियों का फतवा था कि अग्रजों की शिक्षा इस्लाम विरधी है। इसलिये मुसलमान समाज उसका बहिष्कार कर रहा था। दूमरी ओर हिन्दू समाज जोरा से उसका लाभ उठा रहा था। फलतः अग्रजों की शिक्षा से होनेवाला लाभ हिन्दुओं को तो मिलते थे व सरकारी नौकरियों में बड़ी संख्या में शामिल हो रहे थे परन्तु मुसलमान उन लाभों से वंचित थे। इससे मुसलमानों के मन में एक स्वाभाविक भावना यह पैदा हो रही थी कि राज्य तो हमारा गया और अब बढ़ रहे हैं ये। यत्न तक हमारी प्रजा थी। आज हमपर हुकूम चलाने लग हैं। यदि ये हमारे दोस्त होते तो हमारा साथ देकर ये भी ब्रिटिश शिक्षा का बहिष्कार कर दें। मगर मालूम था यह होना है कि जब ये ही हमपर राज्य करेंगे। जम जम हिन्दुओं का घात सरकार के सामने चलनी गई और यह स्वाभाविक था, क्योंकि मुसलमान तो आग आ ही नहीं रहे थे

और जैसे जैसे उनकी अधिक उन्नति होती गई, वैसे-वैसे यह भावना भी बढ़ती गई।

जंग्रेज चफमरो और वाइसराय लिटन (१८७६-१८८०), डफरिन (१८८४-१८८८), वजन (१८६६-१९०५) तथा मिटो (१९०५-१०) ने इस भावना को बढ़ाने से भारत में उदित होती हुई राष्ट्रीय तथा श्रान्तिकारी भावनाओं के विरुद्ध और जंग्रेज साम्राज्य के पक्ष में मोड़ने का सफल प्रयत्न किया।

शासकों के सहायक सर सयद अहमद खा

इस कार्य में मदद के लिए जंग्रेज शासकों का एक कुलीन, प्रतिभाशाली और प्रभावशाली व्यक्ति मिल गया—सर सयद अहमद खा (१८१७-१८६८), जो बाद में 'सर' की उपाधि से विभूषित हुए। सर सयद अहमद के पिता मुगल दरबार में एक उच्च अधिकारी थे। मुगल बादशाह की सर सयद पर कृपा-दृष्टि थी और वचन में सर सयद महल में आया-जाया करते थे। मुगल दरबार की तहजीब उनमें पूरी-पूरी उत्तरी थी, फलतः उनका व्यवहार और बालबाल लोगों को प्रभावित करता था। अंग्रेजी शिक्षा उन्होंने नहीं पाई थी, अंग्रेजी के कुछ शब्द अवश्य सीख लिए थे, उनका उपयोग मौला आने पर किया करते थे। परन्तु अरबी, फारसी और उर्दू भाषाओं पर उन्हें असाधारण अधिकार प्राप्त था। छोटी उम्र में ही उन्होंने कम्पनी सरकार के अधीन एक छोटी-सी नौकरी प्राप्त कर ली थी। मुगल बादशाह ने इस नापसन्द करके उन्हें अपने दरबार में किसी अच्छे पद का वादा करके वापस बुलाया। परन्तु शायद मुकदमों में सर सयद अहमद की दीर्घ दृष्टि ने देख लिया था कि मुगल साम्राज्य के दिन लड़ चुके हैं इसलिए वह कम्पनी की नौकरी में बना रहा। धीरे-धीरे वह उन्नति करता गया। १८५७ में उसने अनेक अंग्रेजों की प्राण रक्षा की, इसलिए उसे जीवन भर के लिए पेंशन वादा दी गई और साथ ही सबजनों की बराबरी के एक पद पर नियुक्त कर दिया गया, जिससे उन्होंने १८७६ में अवकाश प्राप्त करके गैर जीवन अलीगढ़ में बिताया। अपनी नौकरी के दिनों में उन्होंने बहुत-से अंग्रेजों को मित्र बना लिया था। उनमें से तीन—थियोडोर बक प्राफेसर (बाद में, सर) टामस आर्नाल्ड, और प्राफेसर (बाद में, सर) थियोडोर मारोसन—उनके स्थापित किए हुए मुस्लिम एग्ला ओरियंटल कालेज, अलीगढ़ में प्रिंसिपल और अध्यापक रहे। वेक ने प्रिंसिपल

की हैसियत से और गैर दोनो ने अध्यापकों के तौर पर उम काल का निर्माण और विनास किया जिससे कि आगे चलकर वह भारत के मुसलमानों की राजनीतिक प्रेरणा और गतिविधि का पन्द्र बन गया। इनके अलावा भारत और इंग्लैंड के राजनीतियों में और भी अनेक उच्च पन्स्य और चतुर अप्रेञ उनके मित्र और सहायक बने थे। लाड लिटन उनसे खुदा थे लाड डफरिन उनपर मुत्स्य थ। एक मामूली मुसाएफ अर्थात् सबजज व अपनी नौकरी के िनों में ही इतना बड़ जान का दूसरा उदाहरण ब्रिटिश शासन व इतिहास में गायद ही मिलेगा।

राष्ट्रवादी सर सयद अहमद

सर सयद लाड रिपन के शासन-काल के अन्त तक भारत का एक अग्रद राष्ट्र मानते थे। पंजाब के हिन्दुओं के एक मानपत्र के उत्तर में उन्होंने १८८३ में कहा था कि भारत में रहनेवाले हिन्दू और मुसलमान सब हिन्दू हैं, मुझे अपसोस है कि आपने मुझे हिन्दू नहीं कहा। अपने अन्वभाषण में उन्होंने भारत को हिन्दुओं और मुसलमानों का एक अखंड राष्ट्र बताया था और दोनों सम्प्रदायों को मिल-जुलकर उन्नति करने की शिक्षा दी थी। पर घटनाक्रम के विवर्तन ने जाहिर है कि वह भी पहले भीतर भीतर ओर बाद में गाफ तौर पर हिन्दुओं व प्रति स्पर्धा के शिकार थ। अप्रेञ अधिकारियों ने १८५७ के भाग फूट फलाने के लिए जिस नीति का अयलम्बन लिया, वह मुसलमानों को यह प्रेरणा देने की थी कि व अग्रज सरकार से मिलकर अप्रेञी राज्य का लाभ उठान के प्रयत्न क्या नहीं करते। सर सयद ने इस कल्पना का पकड़ लिया और स्थिर रूप किन्त अत्यन्त चतुराई से यह प्रचार करना शुरू कर दिया कि मुसलमानों का हित हिन्दुओं से मिलकर सरकार के विरुद्ध जाग्योला करने में नहीं है, बल्कि सरकार से मिलकर रहने और हिन्दुओं की प्रवृत्तियों का विरोध करने में है। अप्रेञ अधिकारियों, वादम राय लिटन, डफरिन और कजन तथा अग्रजों व अग्रजों ने उनको इस विचार को गूँव बढ़ावा दिया।

शियोडोर वेब की कूटनीति

सर सयद ने कट्टर मुसलमानों को समझा-बुझाकर मुसलमानों की शिक्षा व लिए अलीगढ़ में मुस्लिम एंग्लोआरियटल कालज की स्थापना कर ही दी थी

(१८७५) और भी अनक सस्थाए मुसलमानों के हितके लिए खोला थी। सरकार ने उनके इस काय का खूब स्वागत किया था। १८७७ में स्वयं लाड रिपन मुस्लिम कॉलेज की शिला रखने के लिए थलीगढ गए थे। इस कॉलेज के प्रिंसिपल थियोडोर वेब बहुत चतुर कूटनीतिज्ञ थे। उन्होंने कॉलेज को मुस्लिम राजनीति का केन्द्र बना लिया। मुस्लिम राजनीति व असली जनक उन्हें ही मानना ठीक होगा। परंतु वे और उनके साथी सदा मर सयद को आगे रखकर काम करते थे। ब्रान्च में ब्रिटिश सरकार ने इन तीनों कूटनीतिज्ञों की सेवाओं का पूरा-पूरा पुरस्कार दे दिया।

लाड रिपन के काल में यह साम्प्रदायिक थिये जिस हद तक पहुंचा था उसका नाम उस समय के एक उदाहरण से हो जाएगा। लाड रिपन के जमाने तक स्थानिक स्वराज्य सस्थाओं के सदस्य सरकार द्वारा नामजद किए जाते थे और उनमें अध्यक्ष सरकारी अधिकारी होते थे। लाड रिपन ने इस प्रथा को ताड़कर निवाचन की पद्धति जारी करनी चाही। मर सयद अहमद ने जो गवर्नर जनरल को कौंसिल के सदस्य नामजद कर लिए गए थे, १८८३ में कौंसिल में भाषण किया 'साधारण चुनाव की पद्धति जारी करना हितकर नहीं है। हिंदुओं का बड़ा सम्प्रदाय मुसलमानों व छोटे सम्प्रदाय के हितों को पूरा-पूरा निगल जाएगा।'

साम्प्रदायिकता के अकुर

सन् १९०६ में दो दूसरी घटनाएँ हुई। कुछ अग्रज अधिकारियों ने मुसलमानों को उभासा कि वे वाइसराय मिंटो के पास एक सिष्टमडल ले जाएँ और अपने लिए अलग अधिकारों की मांग करें। आगाथा व नेतृत्व में यह सिष्टमडल लाड मिंटो ने मिला। इसने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की ज़ारदार भाग की। वाइसराय ने अपनी सहानुभूति दिखाई और सिष्टमडल का एक शानदार वन भोजन दिया। बाद में उन्होंने लिखा 'यह दिन बहुत ही महत्त्व का था' 'यह भारतीय इतिहास का युग प्रवर्तक दिन था।

दूसरी घटना ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना की थी। उपयुक्त घटना से प्रेरणा पाकर ढाका के नवाब सलीमुन्ना गाँव "ब्रिटिश सरकार के प्रति मुसलमानों की कफादारी बढ़ाने और मुसलमानों के राजनीतिक तथा अन्य हितों की

रक्षा करने के लिए 'वहा मुस्लिम लीग की स्थापना की। स्पष्टतः लीग कांग्रेस के विरोध में खड़ी की गई थी। लाड मालेन ' कांग्रेस का मुकाबला करनेवाली घरेलू समस्या ' कहकर इसका स्वागत किया था और सरकार से निष्काश की थी कि वह इसका पोषण करे।

ये सब अग्रज अधिकारियों का बोध हुए और सर सयद तथा उनके अनुयायियों के सीचे बीजा के अकुर थे, जो बराबर बढ़ते ही गए और अतंत रक्तरजित भारत विभाजन तथा पाकिस्तान का निर्माण के कारण बने। अग्रजों के हाथ में खेलकर और उनके कृपा भाग्य बनकर थोड़े से पत्ते लिसे कट्टर मुसलमानों की महत्वा काक्षाएँ पूरा करने के लिए माने गए की आकांक्षा पूर्ति का प्रयत्न करने वाली कांग्रेस का विरोध उन्होंने उसका तीसरे अधिवेशन से ही शुरू कर दिया था। भारत और इंग्लैण्ड के अग्रजों समाचारपत्रों में इन्हें इसमें भरपूर प्रोत्साहन दिया था। वहानी इस प्रकार है

लखनऊ का कांग्रेस-विरोधी भाषण

कांग्रेस का पहला और दूसरा अधिवेशन मम्बई तथा कलकत्ता में तो जैसे जैसे कुशलपूर्वक निभ गया। इनमें हिंदू, मुसलमान ईसाई, पारसी आदि सभी लोग शामिल हुए। परन्तु जब तीसरे अधिवेशन का समय आया अग्रज अधिकारी बहुत नाराज हो उठे। उन्होंने उससे मुसलमानों को अलग रखने का जो-ताड़ प्रयत्न किया और इसका लिए सर सयद से ज्यादा अच्छा आदमी और कौन मिल सकता था ?

मद्रास के तीसरे अधिवेशन का अम्मदा उस समय के प्रसिद्ध मुस्लिम नेता श्री बदरुद्दीन तयबजी मनोनीत हुए थे। अधिवेशन २८ दिसम्बर से होनेवाला था। इसी बीच दिसम्बर महीने में ही लखनऊ की एक बहुत बड़ी सभा में जिसमें मुहम्मदन एजुकेशनल कानफरेस का लिए दश भर में आठ प्रतिनिधि भी शामिल थे सर सयद ने एक अत्यंत विपत्ता भाषण दे डाला। उसमें उन्होंने जो बातें कही उनमें से कुछ ये हैं (पायोनियर कलाहाबा ११ जनवरी, १८८८)

"सरकार कानून बनाने में अनता का पूरा सहयोग पती है उम्क विचारों का सवाल किए बिना कोई कारवाई नहीं की जाती।

'उन्होंने कांग्रेस के आन्दोलन को 'मूलनापूण', कांग्रेस के अधिवक्ता को बलम के ऋण के मात्र— भिक भिक भिक भिक भिक और बात का बगड— 'बक बक बक बक बक' बताया।

उन्होंने बंगालिया को एक लाग बताया, जो भोजन की छुरी दाबकर ही कुरसी के नीचे तिसक जाएगे।

'अगर आपका यह मज़ूर है कि दस बंगालिया के ग़ासन में पढ़कर कराहता रह और देग के लाग बंगालिया के जून चाटते रह तो, खुदा हाफिज़ 'जल्दी से गाड़ी मकूँए और आराम म मद्राम पहुँच जाइए। (कांग्रेस अधिवक्ता म गामिल होन के लिए)।

लन्दन के 'टाइम्स' म छपा पत्र

दम्बई के टाइम्स आफ इंडिया' म इस भाषण की रिपोर्ट १७ जनवरी १८८८ को प्रकाशित हुई थी। परंतु इस भाषण म जो बातें कही गई थी वही लन्दन के 'टाइम्स' म २२ दिसम्बर का ऐन इंडियन माहम्मदन के नाम से निम्न एक पत्र में प्रकाशित हुई थीं। पत्र को पढ़ने से मालूम होता था कि उस लिखन वाला बाद उच्च अधिकारी है और वह किसी दूसरे की प्रेरणा से लिखा गया है। १८ जनवरी के टाइम्स आफ इंडिया' म उस उद्धृत करके मर सयद के भाषण पर सपाक्षीय लेख लिखा गया था। पत्र के कुछ वाक्यों का सारांग यह है

'इंडियन नेशनल कांग्रेस मुट्टी भर बंगाली तथा पारसी लोगों द्वारा राडी की गई है।

'कलकत्ता के मुसलमानों ने अपने प्रतिनिधि भेजने से इनकार कर दिया है, क्योंकि उन्हें भारत सरकार पर पूरा विश्वास है और खास तौर से इस समय जब सरकार ज़रूरी सुधार जारी कर रही है, वे उसे बाध करना नहीं चाहते।'

'एगो इंडियन पत्रा ने यह चर्चा शुरू कर दी है कि मुसलमानों का कांग्रेस में बिल्कुल शामिल होना ही नहीं, इसपर भी क्या उसे भारत भर की राष्ट्रीय कांग्रेस कहा जा सकता है?'

'वस्तुतः कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है। मुसलमान न तो उसमें सम्मेलन करने में सहानुभूति।

'टाइम्स आफ इंडिया' का सपादकीय लेख

'टाइम्स आफ इंडिया' के सपादकीय लेख में कहा गया था

"खाल उबड़ देने वाला भाषण" "उन्होंने प्रातिनिधिक शासन की कल्पना को ही अत्यावहारिक और असम्भव बताया।

सयद अहमद साहब ने कहा था 'मेरे भाइया! पठान सयद, हाशिमा, कुरेशी विरादरान। आपके खून में इब्राहीम के खून की खुशबू भरी हुई है। आप फीज में कनल और मेजर की चमकदार लाल पोशाकें पहनकर गाने से घमण्ड। इसलिए, मेरा कहना मात्र कांग्रेस का विरोध कीजिए और सरकार के साथ मिलकर रहिए।'

"अगर आप मेरी बात नहीं मानेंगे और कांग्रेस का विरोध नहीं करेंगे तो दूसरा नतीजा सिर्फ यह हो सकता है ब्रिटिश सभियों के प्रहार और बंगालिया के जून चाटना।'

भरत में १६ मार्च, १८८८ को एक भाषण करते हुए सयद अहमद साहब ने कुरान का हवाला देते हुए कहा 'सुदा का फरमान है कि मुसलमान घर मुसलमानों के दोस्त नहीं हो सकते। हा, ईसाई लोग कुरान गरीब में आते हैं। उनके साथ मुसलमान सहयोग कर सकते हैं। अगर मुसलमान दोस्त हो सकते हैं तो सिर्फ ईसाइयों के हो सकते हैं।

इस भाषण में कांग्रेस से अलग रहने के लिए यह लोभ भा बताया गया था "आप चमड़े, हथौड़े और कपास के निर्यात का सारा व्यापार अंग्रेजों से छीन लेंगे और अंग्रेज कभी आपका आँसू नहीं आएंगे।

कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन के अध्यक्ष एक मुसलमान—श्री बरूद्दीन तमबजो थे। इसलिए सयद साहब के एक अनुयायी ने उन्हें पत्र लिखकर भाग की कांग्रेस को आज हमारी खतरनाक है। इसलिए कोई ऐसा तरीका कीजिए कि मुसलमानों को कांग्रेस से कोई फायदा हो जाए।

तुरन्त पुरस्कार

बड़ी लिखचस्प बात यह है कि इंग्लैंड और भारत में अंग्रेज पत्रों और जर्नलकारियों ने सयद साहब के खतरनाक भाषण की मुक्त कंठ से सराहना तो की ही,

उसके तीन दिन बाद उन्हें 'सर' की उपाधि से अनुगृहीत करने की सरकारी घोषणा भी हो गई।

सर सयद न कांग्रेस के मुकाबले पर दजनों मुसलमान संस्थाओं की स्थापना की परंतु वे धीरे धीरे बन्द हो गई। फिर भी वे अपना काम तो कर ही गई। कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन के पहले बहुत दिनों तक अफवाहों का ताता बघता रहा कि आज अमुक स्थान के मुसलमानों ने कांग्रेस में शामिल न होने का फैसला किया है, कल अमुक स्थान के मुसलमानों ने। और ये सब अफवाहें निराधार होती थीं।

सयद साहब १८८३ और १८८७ के बीच के ४ वर्षों में ही कसे रस्ते बदल गए, यह राजनीति और मनोविचार दोनों का विषय है।

आठ अधकार और प्रकाश

लोकमाय बाल गंगाधर तिलक (१८५६-१९२०) १८८६ की बम्बई कांग्रेस में प्रतिनिधि बनकर पहली बार शामिल हुए। इसके पूर्व वे जपान पत्रा— मराठा' और 'केसरी' के द्वारा और पूना की 'सावजनिकसभा तथा 'शिशा मडल' के द्वारा स्वाधीनता की भावना जागृत करने में सफल हो चुके थे। बम्बई कांग्रेस में उन्होंने यह आवाज उठाकर कि कांग्रेस को स्वराज्य की शिक्षा मागने का नीति छोड़कर प्रत्यक्ष कार्य करना चाहिए, कांग्रेस का रुख ही बदल दिया था। गोपाल कृष्ण गोखले और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नरम दल उनसे संशुभित हो गया और आगे चलकर, जब लोकमाय तिलक का रुख बराबर उग्र से उग्रतर ही होता गया कांग्रेस में दो स्पष्ट गुट बन गए—लोकमाय का गरम दल और गोखलेजी का नरम दल। १९०८ तक जब लोकमाय को ६ वर्ष का कारावास देकर माडले की जेल में भेज दिया गया, इन दोनों दलों में बहुत विराध रहा। लोकमाय की अनुपस्थिति में कांग्रेस नरम दल के ही हाथों में रही।

जैसे-जैसे कांग्रेस की प्रवृत्तियाँ खोर पकड़ती गई अग्रज गायक मुसलमानों का अधिकार अधिक भडकात गए। सर समयद अहमद ने हिन्दुओं और मुसलमानों के दो पक्ष राष्ट्र होने का जो नारा उठा दिया था वह मुसलमान नेताओं के मन में धर गिर गया। अग्रज गायकों के प्रास्ताहन और सहयोग से वे उमसे बराबर चिपट रहे और ससदाय गायकों प्रणाली तथा संयुक्त निर्वाचन का विरोध करते हुए पक्षक निर्वाचन की माग करते रहे।

जिनका साहन कट्टर राष्ट्रवादी थे

श्री मुहम्मद अली जिन्ना १९०६ के मलक्ता अधिवेशन में कांग्रेस में शामिल हुए थे। अधिवेशन के अध्यक्ष दादामाई नौरोजी थे, जिनके जिन्ना साहन प्राइवेट

मन्ट्री रह चुके थे और जिनका उनपर बहुत प्रभाव था। उस समय, उनके पहले और उसके बाद बहुत दिनों तक जिना माहुर बड़े कट्टर राष्ट्रवादी थे। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में मेल कराने के बहुत प्रयत्न किए थे। उनकी ही प्रेरणा से मुस्लिम लीग ने औपनिवेशिक स्वराज्य का अपना लक्ष्य घोषित किया था। उनकी ही प्रेरणा से कई वर्ष तक मुस्लिम लीग और कांग्रेस के अधिवेशन साथ साथ होने लगे थे। गांधीजी ने व परम प्रशंसक थे। एक बार उन्होंने कहा था 'मरी महत्वाकांक्षी मुसलमान गांधीजी बनने का है।' राजमाय गांधीजी ने भी उनका सम्बन्ध में एक बार कहा था 'उनका चर्ची योग्यता है। साम्प्रदायिक राग द्वेष से वे मुक्त हैं, जिसके कारण वे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के अच्छे से अच्छे पक्षवादी बनेंगे।' जिना साहब ने हिन्दू मुसलमानों का एक सवाग सम्पूर्ण राष्ट्र बनाने की दिशा में बहुत कुछ किया, परन्तु पृथक निर्वाचन का जो लोभ दिखाकर अंग्रेजों ने हिन्दू मुसलमानों में सदा के लिए फूट के बीज बो दिए थे, उनका चंगुल से छूट निकलना उनके लिए भी सम्भव नहीं हुआ। १९१३ में उन्होंने कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता करा दिया था परन्तु कांग्रेस का पृथक निर्वाचन की बात तो स्वीकार करना ही पड़ी थी। १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में उनकी जिम १४-मूत्री व्यवस्था के आधार पर मुसलमान कांग्रेस में शामिल हुए थे उसमें भी पृथक निर्वाचन था ही। परन्तु १९१७ में मलका जा उपक्रम शुरू हुआ था उसका परिणाम अनेक वर्षों तक बहुत सुखद रहा और अंग्रेज शासन को उससे घबराकर नई कारवाइया करनी पड़ी।

अब वह कांग्रेस के गरम दल का फाटन का प्रयत्न करने लगे। जिम गरम दल का लक्ष्य था कि जेल से छूटकर जाने पर (१९१४) गरम दल के साथ फिर अच्छा मेल हो गया था, वह १९१६ में तक कांग्रेस से बिल्कुल अलग हो गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे अनेक महान नेताओं ने सरकारी पद स्वीकार कर लिए। यह कांग्रेस की एक बड़ी क्षति थी।

जिना साहब भी १९२० में कांग्रेस में अलग हो गए। मुसलमान नेताओं के रूप में कांग्रेस में मोताना मुहम्मद अली और उनके बड़े भाई मौलाना मौक़्त अली का प्रभाव बहुत ही था। यही मोताना भाई कट्टर मुसलमान थे। केवल इसलिए कांग्रेस में शामिल हुए थे कि कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में खिलाफत का मामला अपना लिया था। जिना साहब ने उस समय गांधीजी का चेतावनी दी

थी कि इन नेताओं को बढाना राष्ट्र के लिए खतरनाक होगा परन्तु गांधीजी पर उनमें अटूट विश्वास बढ चुका था। व कहा करने थे कि "बड़े भाई मुझ अपनी जब मरसते हैं।' समय आने पर अली बंधु पूरी तरह से मुसलमाना के नेता बन गए।

फिर जब कट्टर मुस्लिम नेता बने

जिन्ना साहब इंग्लैंड में जाकर बवालत करने लगे। कई वर्ष बाद जब लौट कर भारत आए तब वे बहुत अधिक कट्टर मुसलमान बन चुके थे और दोनों मप्रदाया में एकता की संभावना बहुत दूर की वस्तु हो गई थी, जती कि अन्ततः साबित हुई।

१९२० में कांग्रेस द्वारा गांधीजी का असहयोग का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया जाने पर नरम दल के जो नेता कांग्रेस से अलग हो गए थे उनके साथ कांग्रेस के नेताओं का छुटपुट संपर्क होता रहता था। उसके कारण कांग्रेस का आंदोलन में बाधाएं भी पड़ती थीं। १९३० के निकट आते आते मुस्लिम लीग का भी विरोध बढ गया, हालांकि उसके पहले साइमन कमिशन के आने पर जिन्ना साहब ने मुस्लिम लीग का यह सलाह दी थी कि उक्त कमिशन के बहिष्कार में मुसलमानों को कांग्रेस से मिल जाना चाहिए। फिर भी गेव वातो में अलग रहने की ही सलाह थी। ऊपर हिंदू महासभा भी अपना एक अधिकाधिक कट्टर बनाती जाती थी। इस प्रकार कांग्रेस के सामने तीन पक्षों का विरोध से निपटने की समस्या थी। बाद में डा० भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में हरिजनता का भी संगठन हो गया, और वे अलग अधिकार मागने लगे। इस संगठन के पीछे जो सरकार का ही हाथ और प्रारंभ हुआ था। गालपड परिपदा के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत पर एक साम्प्रदायिक नियम लागू करने का प्रयत्न किया जिसके विरोध में गांधीजी का आमरण अनशन करना पडा। परन्तु डा० अम्बेडकर के अन्ततः आगे गांधीजी का एक प्रस्ताव स्वीकार कर लने पर वह भयंकर परिस्थिति टल गई।

हिंदू मुस्लिम अलगाव का दूसरा कारण

हिंदुओं और मुसलमानों में अलगाव का एक स्वाभाविक कारण

और भी है। जमा पहन बताया जा चका है, भारत में राजा राममाहन राम क काल में ही पश्चिमी सभ्यता की जाति फलन लगा थी। उस समय मुसलमान जनता अंग्रेज गामका म नाराज और हताश थी क्योंकि उन्होंने मुसलमान राज्य का मिटा दिया था और फिर भी जनता मुक्त कर नहीं सकती थी। अंग्रेज यह बात जानते थे और वे भा मुन्लाआ का गका की दृष्टि से देखते थे। इस दुःख कारण से मुसलमान समान अंग्रेजों का लाइ हर्ड पश्चिमी सभ्यता का कोई लान नहीं उठा सका। उमक मौनवी मुहलाजा न अंग्रेजों की सभ्यता तथा अंग्रेजों शिक्षा का गर इस्लामी करार दे दिया था। दूसरी आर, हिन्दुओं ने उमका भर पूर लान उठाया था। इन जाग्रत हिन्दुओं न अपने समाज की भी उन्नति करन का प्रयत्न किया। स्वभावत ही य सब प्रयत्न हिन्दू ढग के, हिन्दू सभ्यता और हिन्दू सस्कृति के अनुष्प थे।

हिन्दुओं न आग चलकर जा राजनीतिक आन्दोलन शुरू किया उनमें भी हिन्दू बन आया, क्योंकि हिन्दू नताआ का विश्वास था कि भारत की पुनरचना हिन्दू सस्कृति और धर्म के ही आधार पर हा सकती है। वकिमचन्द्र चटर्जी की पुस्तक 'आनन्दमठ', जिसमें राजनीतिक आन्दोलन का प्रात्माहन ही नहीं उस जीवन प्रदान करन के लिए महान 'बन्देमातरम' गीत भी प्रदान किया, हिन्दू धर्म और हिन्दू सस्कृति की ही परिषापक थी। उनमें भारतमाता का दुर्गा कहा गया है। दूसरी आर लालकमान्य तिलक न भी पहले-पहन मराठा को जगान के लिए 'गणगोत्व' और 'गिवाजी उत्सव' का आयय लिया। गावध का बन्द करान और मसजिद के सामन वाना बजान की स्वतंत्रता प्राप्त करान के लिए प्रयत्न करक भा उन्होंने हिन्दू समाज को अपनी मुटटा में लिया। ब्रह्मसमाज, आयसमाज और वियामाफिकन सोमास्टी के काय भी हिन्दू सस्कृति से ही सम्बन्ध रखत थे।

महत्वाकांक्षा और लोभ

इस प्रकार सावजनिक जीवन का नई लहर भले ही अचतन रूप में बया न हा, हिन्दुत्व की धारा में ही उठी। गायद इसमें मुसलमानों का भी शामिल मान लिया गया। परन्तु मुसलमान अब तक हिन्दुओं में घुले मिल नहीं थे। भारत में इस्लाम का आगमन एक प्रसारणीत धर्म के रूप में हुआ था। पहले के आक्रमणकारियों के

समान स्वयं बदल जानवाला वह नहीं था—उसकी महत्वाकांक्षा भारत भर के हिन्दुओं को अपने दामन में ले लेने की थी। फलतः उसका व्यक्तित्व कायम रहा। धर्मातिरिक्त लोग हिन्दुओं से लड़ते भगड़ते तो नहीं थे, परन्तु इस्लाम की दाशापान पर नासक जाति में शामिल हो जाने का गौरव हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। इस मनोभूमिका पर देखा जाए तो यह स्वाभाविक ही था कि हिन्दुओं का प्रगति करत हुए दखन के भी अपना साम्प्रदायिक संगठन करने।

सारे राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए हिन्दुओं के साथ मिलकर लड़ते जोर स्वतंत्रता मिल जाने पर हिन्दुओं के साथ अपना हिस्सा बँटाव करते—यह तक बहुत महत्वपूर्ण है। हिन्दुओं के लिए यह स्वाभाविक भी है। परन्तु जब एक नाराज, विप्लवस्त असहाय समाज को, जो मुसलमानों का था यह लोभ दिखाया जाए कि तुम्हारी हालत बिना लड़े ही सुधर सकती है केवल हिन्दुओं से या कायस सभलग रहकर सरकार के प्रति वफादारी की घोषणा कर देना ही इसके लिए काफी होगा तब वह कैसे न लोभ में आ जाए? उमक सामने दो उपाय थे हिन्दुओं से लड़ना या अंग्रेज सरकार से लड़ना। अंग्रेजों से लड़ने में बहुत कष्ट उठाना पड़ता हिन्दुओं से लड़ने में अंग्रेज सरकार की सगीना की मदद भी मिल जाती है और लाभ भी साथ ही साथ होता जाता है। इसलिए यदि लड़ना ही जरूरी है तो हिन्दुओं से लड़ना ही ठीक होगा—यही धृति उसका हाँ सकता थी और हुई।

नाइ वजन और बग मी

साइ निटन और नाइ डफरिन न वाइमराम रहत हुए मुसलमानों में पथक निर्वाचन की मांग करने का आग्रह पदा कर ही किया था। साइ वजन न उम एक वक्त में जोर आगे बढाया। उसने मुस्लिम उद्भूत प्रजाता का निर्माण करने और जायत बगानिया को कमजोर कर देने के रूपाल में बगाल के दो टुकड़े कर दिए। बगाल के नवाबों ने ही नहीं सारे भारत के नवाबों ने इस कारवाइ का विरोध किया इसकी निंदा की परन्तु नाइ वजन टंग से मम न हुआ। और जब बगाल का जनता ने आन्दोलन शुरू किया तब उमने घोर दमन चक्र चला दिया। बगाल ने ब्रिटिश माल का बहिष्कार करके इसका मुकाबला किया। इसपर बगाल सभाए करने, अगबारा में सरकार विरोधी लेख लिखने आदि पर प्रतिबंध लगाए गए और मुद्रका की गिरफ्तारिया हान लगा। आखिर स्कूला और कानना के विद्या

दिया ने छुप छुपकर बम बनाने शुरू किए और अग्रेज अफमरा की जानें भी ली। सरकार अपना दमन चक्र चलाती ही रही, और आन्दोलन दबता ही गया। इसी सिलसिले में लोकमाय तिलक को ६ वर्ष की सजा दकर बर्मा की जेल में रत दिया गया। लाला लाजपत राय का दशनिवाला दिया गया, श्री धरविन्द पर मुकदमा चलाया गया। सक्डा युवका को बिना मुकदमा चलाए जेल में बन्द कर दिया गया। नरम दलवाले नेताओं का भी सरकार पर कोई प्रभाव न पडा, और बं खिन हुए।

इसी बीच, लाड कजन और भारतक प्रधान सेनापति लाड किचनर म जारो का मतभेद हा गया, इसलिए कजन त्यागपत्र देकर चला गया (१९०५)। परतु उमक बाद लाड मिटो (१९०५ १०) ने भी उसीकी दमन-नीति जारी रखी।

लाड हार्डिंग और मार्ले मिटो सुधार

उमके बाद लाड हार्डिंग आया। उसक जमाने में राजा पचम जाज भारत आनवात थ (१९११)। उनके लिए आयोजित दरबार को सफल बनाने के लिए उसे भारतीय नेताओं को प्रसन्न करना था और बगाल में, विशेषतः कलकत्ते में, गान्धि भी स्थापित करनी थी। इसलिए उसने बग बिच्छे को उलट दिया और बगाल फिर से जसड हो गया। इसी वाच उसन भारत की राजधानी कलकत्ते में िल्लो हटा दी। इससे नरम दल के नेता सरकार से फिर सहयाग करने लग।

मुसलमानों को भा अपनी ओर अधिक खींचने के लिए यह अवसर अच्छा था। उह और भी बुद्ध लोभ दिखाया जा सकता था, क्योंकि समाज में जागति न होने के कारण उनको लोभ देने का अर्थ उनके कुछ नेताओं का फायदा पहुंचा देना मात्र हाता था, जो सरकार के लिए बहुत आसान था। वास्तव में ता सरकार उनक प्रति भा वही व्यवहार करती थी जो हिंदुओं के साथ। १९०६ में उसने मुसल माना और नरम दल के नेताओं को खुग करने के लिए मार्ले मिटो सुधारों की घोषणा की। उन सुधारों में मुख्य निर्वाचन की स्वीकार करके मुसलमानों की इच्छा पूर्ण की गई और देश में सदा के लिए साम्प्रदायिकता का बीज बो दिया गया।

कौसिना म्यूनिसिपलिटिया आदि में चुन हुए सदस्या की संख्या बढ़ाकर नरम दलवाला को खुग कर दिया गया। परतु वास्तव में ये सुधार बहुत भयानक थ।

दुधारी नीति

पथक निर्वाचन की व्यवस्था करके मुसलमानों को खुश करने के साथ ही उनकी भावनाओं को भयानक चोट पहुंचाने में भी ब्रिटिश सरकार ने सकोच नहीं किया। टर्की का सुल्तान मुसलमानों का खलीफा भी था। उसके राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह खड़ा हो गया और राज्य के नष्ट होने के आसार दिखाई देने लगे। विद्रोह रुम की सहायता और ब्रिटेन की कूटनीति के कारण बढ़ता जा रहा था। भारत के मुसलमान इससे चिंतित थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से बहुत आरतू मिनतों की कि टर्की के सुल्तान की रक्षा की जाए परंतु ब्रिटिश सरकार अपने रुत पर अड़ी रही। इससे मुसलमानों को बहुत धक्का पहुंचा और ब्रिटिश के प्रति उनकी वफादारी खत्म हो गई। इसका एक कारण और भी था। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर बहुत अत्याचार किए जा रहे थे। वहां मुसलमान व्यापारियों की संख्या अधिक थी। ब्रिटिश सरकार का रुख उनके प्रति सहायतापूर्ण नहीं था। गांधीजी को उनके अधिकारों के लिए सत्याग्रह आन्दोलन चलाना पड़ रहा था। इन अत्याचारों के समाचार भारत पहुंचते थे और वहां की जनता का रून खीलता था।

मुसलमान जनता भी इस प्रभाव से बरी न रह सकी। इसी समय भारत की मुस्लिम लीग की रागडोर कुछ नये विचारों के युवकों के हाथ में आ गई। थी जिना के नेतृत्व में उन्होंने कांग्रेस के साथ मिलकर स्वराज्य-संघर्ष में भाग लेना तय कर लिया। यह अंधेरे में प्रकाश की एक भन्नक थी। लीग का यह रुत लगभग १० वर्ष तक चला। बाद में उसमें फिर परिवर्तन होता गया और वह बराबर अलगाव की ओर बढ़ती ही चली गई।

जलियावाला बाग का हत्याकाण्ड

गांधीजी १९१५ में आरम्भ में दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आ गए। चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद के मजदूरों के सत्याग्रहों का संचालन करने में उन्हें जो सफलता मिली वह हिंदुओं और मुसलमानों दोनों की सफलता थी। उनसे मुसलमानों का विश्वास उनपर और भी जम गया—दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहों के कारण तो उनपर विश्वास था ही। बाद में उन्होंने गिलाफन आगे

सन को अपने हाथ में ल लिया और मौलाना मुहम्मद अली तथा मौलाना शीखत जली की रिहाई की काशियों की जा सफ्तन हुई। इन कारणों से जब उन्होंने १९१६ में रोल्ट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह की घोषणा की उस समय मारा देश उनक साथ था। बशक, नरम दल के नेता उनकी आलाचना करते थे।

आन्दोलन के फलस्वरूप पंजाब में जो अत्याचार हुए और अंत में जलिया वाला बाग का जा भीषण और अमानुषिक हत्याकाण्ड हुआ उन सवम हिंदुओं, मुसलमानों और सिखा का खून एक साथ बहा। कहते हैं कि गहीदा के खून से एकता की नींव पक्की होती है। परन्तु जलियावाला बाग में बहे खून का गारा अपनी ताकत बहुत दिना तक टिकाए न रह सका। कुछ ही वर्षों बाद कोहाट में फिर हिंदू, मुसलमानों और सिखा के खून से धरतीमाता का वस्त्र लाल हुआ— इससे भारतीयों का मस्तिष्क ऊंचा होने के बजाय नीचा हुआ और जा स्वतंत्रता निकट आ रही थी वह दूर हो गई। उनकी पवित्रता और अखण्डता में बट्टा लग गया।

नी

गांधीजी के नेतृत्व में स्वराज्य-संग्राम

चंपारन सेना और अहमदाबाद के सत्याग्रह के बाद रीतट ऐक्ट का विरोध करने पर पंजाब में जो अत्याचार और जलियावाला बाग में जाहत्याकाण्ड हुआ उससे मर्माहत होकर जब १९१६ में गांधीजी ने सारे देश के स्वतंत्रता संग्राम की बागडोर अपने हाथ में ली उस समय देश की स्थिति यह थी

गांधीजी रंगभूमि पर देश की स्थिति

१ हिन्दुओं और मुसलमानों में एक्य हो गया था। १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में जिन्ना साहब के चौदह सूत्रों के आधार पर हिन्दू मुसलमानों में समझौता हो गया था। जिन्ना साहब के सुभाव पर मुस्लिम लीग ने अपना धार्मिक अधिवेशन कांग्रेस के अधिवेशन के साथ ही उम्मीदगढ़ में करना स्वीकार कर लिया था। इसके अनुसार लखनऊ कांग्रेस के समय वही लीग का अधिवेशन भी हुआ था।

२ कांग्रेस ने लखनऊ समझौते के द्वारा मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन का सिद्धांत मान लिया था।

३ कांग्रेस के नरम और गरम दलों का भेद मिट गया था और लोकमान्य तिलक ने हिन्दू मुस्लिम समझौता सम्पन्न कराने के लिए बहुत प्रयत्न किया था। लखनऊ कांग्रेस का श्लेष करते हुए उन्होंने कहा था लखनऊ हैब्रिट अम लखनऊ अधान् लखनऊ में हमारा सदभाग्य उदित हुआ है।

४ गिलाफ्त आन्दोलन का महात्मा गांधी ने अपने हाथों में लें लिया था और उस स्वराज्य-आन्दोलन के साथ-साथ चलाने का निश्चय किया था। गिलाफ्त आन्दोलन को अपनाते का सम्भावना के बल में मुसलमानों ने स्वराज्य आन्दोलन में दिल जान से मद पठना स्वीकार किया था।

५ बंगाल तथा अन्य प्रान्तों में आनन्दबायी युवकों ने अपनी हिमात्मक

कारवाइया बंद कर दी थी। उनमें म कुछ लोग न गांधीजी का अहिंसा का माग स्वीकार कर लिया था, कुछ निष्क्रिय हा गए थे और बहुत-से जेला में पड़े थे। मुसलमाना ने भी नीति के तौर पर अहिंसा का माग स्वीकार कर लिया था।

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में स्थिति अत्यंत दयनीय थी। जनता धारा पतित जसा निरक्षर, निष्प्रयाजत जीवन व्यतीत कर रही थी। उसका तज दानता की काली चार म ढक गया था। वह इवाम ले रही थी, इतना हो बहुत था।

अमहयोग और सत्याग्रह

गांधीजी न सम्पूर्ण दस क मूल, वतमान और भविष्य का सम्यक दृष्टि से दखा—उसके जीवन क विभिन्न जगा पर विचार किया, उसकी समस्याओं को समझा, उसकी प्रकृति और उसकी आवश्यकताओं का अनुभव किया, काफ़े काने वाली कठिनाइया का अनुमान किया पिछले स्वतंत्रता पयत्न की विफलता के कारणों का आकलन किया और बाद म स्वराज्य-संग्राम के लिए सत्य और अहिंसा क आधार पर एक ऐसा अमोघ तथा व्यावहारिक अस्त्र प्रदान किया, जिसपर पहले ता सारा समाज हसा फिर कौहनूल करन लगा और अंत म मुग्ध हो गया। उस अस्त्र क बदले जीवन पद्धति काना अधिक उपयुक्त मानम होना है क्योंकि श्रेष्ठ जीवन उसीक आधार पर—अहिंसात्मक सत्याग्रह क ही आधार पर—बढ़न किया जा सकता है वह सम्यक जावन का भी सम्बल है। जीवन का कोई अग उसस छुटता नगा और पराधीनता उसक पास नहीं फटक सकती। वह आभवल विकसित और प्रयुक्त करन का तरीका है।

उद्धान जो माग बताया और जिसपर भारत को जाग्रत-करके आग बनाया, उसक मुख्य दो पहलू थे एक जोर उद्दीन ब्रिटिश शासन के प्रति अहिंसात्मक असहयोग सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह की सिखा दी, दूसरी ओर अवन दाया और कमियों को दूर करके अहिंसात्मक सत्याग्रह क ही आधार पर राष्ट्रीय जीवन का पुनर्निमाण करन का कहा।

अमहयोग के मुख्य विषय थे (१) कौसिला का बहिष्कार, (२) सरकारी और सरकारी मष्टापना प्राप्त स्कूल-कालजा का बहिष्कार, (३)

सरकारी नौकरियों का बहिष्कार, (४) अदालतों का बहिष्कार, जिसमें वकीलों का बकालत छोड़ना भी शामिल था (५) सरकारी उपाधियों अवतलिक पत्र और नामजदगियों का त्याग, (६) सरकारी दरवारा उत्तमवा दावता जादिका बहिष्कार (७) विदशी वस्त्र का बहिष्कार, (८) मसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए सनिक बलक, मजदूरों जादिका भर्ती का बहिष्कार और (९) मद्य निषेध।

रचनात्मक कार्यक्रम

रतना ही काय बहुत बडा था पर तु इसके साथ जनक रचनात्मक काय भी जोड दिए गए थे, जि ह इस असहयोग यन की पूर्णाहुति मानना चाहिए। सरकारी विद्यालयों के बहिष्कार के साथ राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना और उनमें अध्ययन, अदालतों का बहिष्कार करके पचायतों की स्थापना और उनके द्वारा अपने भगडा को निपटाना और विलायती वस्त्र के बहिष्कार के साथ हाथ स कतार्ई-बुनाई और खादी का प्रचार शामिल था। इस दुहर कार्यक्रम से उन लोगों के काय की "यवस्था हा गई, जो बहिष्कार करन के कारण बकार हा। वास्तव में यह रचनात्मक काय सच्चे स्वराज्य की तयारी थी। खानी का काम या तो दगावासियों का थाडा बहुत काम देने और उहे बमान का जरिया बनाने का है परन्त वास्तव में उस एक ही वस्तु में गांधीजी की अहिंसा का सारा तत्त्वज्ञान समाया हुआ है। उसमें सत्य "वाय प्रम कृष्णा और प्रायश्चित्त समकुछ समाया हुआ है। वास्तव में खानी अहिंसा का प्रतीक है दरिद्रनारायण क साथ घुलमिल जाने का साधन है। परन्तु गांधीजी के रचनात्मक कार्यों की सूची लगातार बन्ती ही गई। अत में उसमें १९ काय शामिल हा गए थे, जो ये हैं

(१) कौमी एकता, (२) अस्पृश्यता निवारण, (३) मद्य निषेध (४) खादी, (५) दूमरे कामोद्योग, (६) गावा की सफाई (७) युनियनों तालीम, (८) प्रौद्योगिकी, (९) स्त्रियों की उन्नति (१०) आरोग्य, (११) प्रांतीय भाषाओं का उपयोग और विकास (१२) राष्ट्रभाषा का प्रचार (१३) आर्थिक समानता (१४) किसानों की उन्नति (१५) मजदूरों की उन्नति, (१६) आन्विवामियों की सेवा (१७) बुच्छरोगियों की सेवा, (१८) विद्यालयों का चारित्र्य निर्माण और (१९) गो-सेवा।

ममग्र दष्टि

इस सूची को समग्र दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो सकता है कि गांधीजी ने सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन के संगठन और पुनर्निर्माण के साथ-साथ ही अंग्रेजों से स्वराज्य छीनने का कार्यक्रम चलाया था। एक वाक्य में कहा जाए तो एक ओर स्वराज्य प्राप्त करने और दूसरी ओर उस ग्रहण करने, उमका सुचारु संचालन करने और उसे टिकाने की तयारी करने का उनका लक्ष्य था। जब स्वराज्य आये तब हम उसके लिए अयोग्य या निष्कम्भ न पाए जाए यह उनकी चिंता थी।

यह तो भौतिक दृष्टि हुई। आध्यात्मिक दृष्टि से तो, जिसका वह राष्ट्र में विकास करने को व्याकुल थे, वे मानते ही नहीं थे कि जिसमें पर्याप्त आत्मबल है वह कभी गुनाहम हो सकता है। व्यक्तिगत बातचीत में तो वे यह भी कहा करते थे कि जिन भारतीयों में आत्मबल है वे अपने आप को स्वतंत्र मानकर व्यवहार करें। किन्तु वे देश के सामाजिक जीवन की दुबलताओं से अनभिज्ञ नहीं थे इसलिए उन्होंने सामाजिक रूप से अपने इस विचार का प्रचार नहीं किया।

भौतिक और सामाजिक दृष्टि से विचार करने पर इनमें से बहुत से कार्यक्रम तो ऐसे दिखलाई पड़ेंगे जिन्हें पूरा किए बिना सच्चा स्वराज्य प्राप्त करना संभव था ही नहीं। उदाहरण के लिए कौमी एकता, अस्पृश्यता निवारण, खादी, प्रांतीय भाषाओं तथा राष्ट्रभाषा का प्रचार, किसान मजदूरों की उत्थिति, विद्यार्थियों का धार्मिक निमाण आदि। बाद की घटनाओं और परिस्थितियों से सिद्ध हो गया कि हम जिन हृदय तक इस कार्यक्रम को पूरा कर सकें उनी हृदय तक हम स्वराज्य के अधिकारी हूँ। अंग्रेजों का जाना और उनके स्थान पर भारतीयों का बैठ जाना गांधीजी की दृष्टि के अनुसार सच्चा स्वराज्य नहीं है। भारत के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण का अवकाश भी गांधीजी की योजना में नहीं था, यह कौमी एकता की कमी के कारण संभव हुआ। यदि उनका कार्यक्रम पूरा हो गया होता तो देश भाई भाई के अवश्यायी रक्तपात और पारस्परिक विद्वेष के स्थायी बीजावाप में तो बच ही जाता, साथ ही आज सारे देश में जो असंतोष फैला हुआ है वह भी न फैलता। सच्चा स्वराज्य का माग तो

बता देने—और पटा देने—के बाद उनमें कहते थे ' यदि मेरी बात तुम्हें पट गई है तो ही उसका पालन करो, नहीं तो और समझो, बिना समझे उसे मत मानो।' मत्स्य और अहिंसा की आराधना जसी उंहाने की थी वसी और किसीने नहीं की। इसलिए स्वाभाविक था कि उनकी दृष्टि दूसरों को प्राप्त नहीं थी। फलतः बहुत से लोग उनकी बात सुनकर पहले तो चकरा जाते थे, बाद में उसे समझने पर उसकी ओर बौद्ध की दृष्टि से दग्धते थे, और फिर भी व्यावहारिक जीवन में अपने शेष विचारा से उसका समर्थन नहीं कर पाते थे। इसके लिए साधना आवश्यक थी। उनकी 'अन्तरात्मा की आवाज से भी दूसरा कर्मन में बहुत उलझन पदा होनी थी परन्तु उनका अन्तरात्मा की आवाज से उह या देग को कभी धोखा खाना नहीं पडा।

इन सब अनमल और कठिन परिस्थितियों में गांधीजी ने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम की बागडोर सभाने और संग्राम में विजय प्राप्त की।

मत्स्य-अहिंसा पर आधारित उनका स्वातंत्र्य संग्राम उन रचनात्मक कार्यों से अलग हो ही नहीं सकता था, जिनकी सूची ऊपर दी गई है। उनके लिए जीवन अखंड था, इसलिए व्यक्ति का जीवन ही या राष्ट्र का उनकी साधना के सम्पूर्ण रूप में ही कर सकते थे। परन्तु जिस प्रकार योग पूरा न होने पर भी व्यर्थ नहीं जाता जिस हृद तक वह पूरा हुआ है उस हृद तक तो लाभ करता ही है उसी प्रकार गांधीजी की जीवन साधना भी व्यर्थ होनेवाली वस्तु नहीं थी। जिस हृद तक राष्ट्र ने उसे सिद्ध किया उस हृद तक उग उसका लाभ मिल गया और मिलता रहेगा।

उंहाने राष्ट्र का एक बुरा शासन-व्यवस्था हटाने की प्रेरणा दी केवल इस लिए कि वह बुरी थी उनके मत्स्य ने देगा कि उस बुरा वस्तु के स्थान में रिकतना नहीं रह सकती अच्छी वस्तु की स्थापना आवश्यक है। इसलिए उंहाने माय हा साथ अच्छी वस्तु की रचना भी आरम्भ करनी। बुरी के स्थान पर बुरी वस्तु को ही स्थापित कर देना सत्य के अनुष्ण न होता।

सर्वथा योग अपेक्षित

उहोन यह भी देखा कि नई व्यवस्था में सर्वथा योग ही चाहिए, उसका लाभ हर व्यक्ति को मिलना चाहिए। सर्वथा योग के बिना नई व्यवस्था मभव भी नहीं है। दशमनारायण का भोजन-वस्त्र तथा जीवन की अन्य सुविधाएँ दिए बिना कोई काम नहीं चल सकता, घम का पालन नहीं हो सकता, संग्राम भी

मफ्त नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने देश का खाली और ग्रामाचार्य का भ्रम किया और खुद से कहा "इमानदारी में परिश्रम करो, आत्मनिर्भर बना।" उप-भाषणात्मक से कहा "ठाकूर मूल्य दा और अपने देश के दरिद्रनारायण का बनाई हुई वस्तुओं का ही उपभोग करा।"

दूसरा मदेश्य उन्होंने दिया 'हिन्दू मुसलमान का भेद मिटाया सब एक होकर भाई भाई जस रहा। खाली के काम से देश के लाखों मुसलमान जुलाहा का उदर पोषण हुआ, हिन्दू मुसलमान का भेद किसीके मन में भी नहीं आया।

उनका तीसरा मदेश्य था 'जिनके प्रति तुम—सबके हिन्दू—सदिया से दुःख-बहार, अत्याचार करते आ रहे हो, जिनकी छाया से भी तुम अपवित्र हो जाते हो, वे हरिजन हैं, भगवान् के जन हैं तुम्हारे ही जस मनुष्य हैं। वे तुमसे बड़े भी हैं क्योंकि अपना जो काम तुम नहीं कर सकते, और जिनके बिना तुम्हारा जीवन ही दूसरा हो जाएगा उसे वे करते हैं, तुम्हारी सेवा करते हैं। उन्हें सभाला, उनके भाई-चारे का व्यवहार करा, उनके प्रति किए पापों का प्राश्चित्त करा—इसलिए नहीं कि वे तुम्हारे संग्राम में तुम्हारा मदद करें बल्कि इसलिए कि इससे तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा।'

बुराईयों को दूर करने की शिक्षा

'इसी प्रकार तुम सभी जातियों के प्रति सत्काम और अत्याचार करते आ रहे हो। स्त्रियों को तुमने गुलाम और बच्चे पक्षी की मर्गिन मात्र बना रखा है। देशान्ता की तुमने उपशान्ति की है। गरीब जमीन गरीबों वस्तुओं के फंदे में तुम फँस रहे हो। अज्ञानता किसानों और निर्माणकर्ता मजदूरों के शोषण पर तुम जी रहे हो। इन सब बुराईयों को दूर करा। अपने बच्चे का दिल दिमाग और हाथ—तीनों की शिक्षा दो, जिससे भारतमाता का भविष्य उज्ज्वल बने। साथ तुम्हारे लिए काम बनू है। उसके तुमपर असह्य और अपार उपकार है। उसका बचन किया जाए, इसकी रट लगाना और उसकी वश रक्षा के लिए आपस में लड़ते रहना ही तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। उसका उचित ढंग से पालन करा। भूक और पराधीनता की तरह उसका सेवा करो जिससे उसे मुक्ति मिले उसकी वृद्धि हो और वह तुम्हारे ही लिए सच्ची काम बन जाए। कुष्ठरोगियों का भी तुमने कितना निरस्वार कर रखा है। उनसे तुम घृणा करते हो, जिससे उनका कष्ट और बढ़

दस

गाधीजी का स्वराज्य का आदर्श

गाधीजी ने अपन आदर्श स्वराज्य की झलक अपना छोटी सी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में दी है। पुस्तक में पाश्चात्य सभ्यता की तीव्र आलोचना करते हुए उन्होंने कहा

शैलानी सभ्यता

“इस्लाम की निगाह से इस सभ्यता को शैलानी सभ्यता कहना होगा। हिंदू धर्म के अनुसार इसे घोर बलियुग कहा जाएगा। भारत में गढ़ा यह पागल सभ्यता नहीं पहुंची है वहां अब भी वह हालत मौजूद है जो पहल कभी समय थी। जिन लोगों को दंग की लगन है उन्हें मैं सलाह दूंगा कि पहल देग के उम हिस्से में जाआ जहां अभी तक रेलगाड़ी की पहुंच नहीं हुई है और छ महान तक वहीं घूम फेरकर सच्ची देगभक्ति अपन अन्दर पदा करा। उसके बाद स्वराज्य की बातें करना।

गाधीजी भारतीय सभ्यता के अनुरूप स्वराज्य का निमाण करना चाहत थे जा उनके इन शब्दों में नी व्यक्त है

मेरा स्वराज्य भारतीय सभ्यता की प्रकृति को जधुण्य रखता। मैं बहुत-बुछ नई खराद करना चाहता हू परन्तु वह सत्र भारतीय गिता पर ही हानी चाहिए। मैं उम हालत में पश्चिम का ऋण लने को नयार हू जब मुझे दठ विश्वास है जाए कि मैं अच्छे षाज के साथ उमकी जग्याग कर सकूंगा।

यग इडिया २६ ६ २४

'हिंद स्वराज' पुस्तक १९०६ में लिखी गई थी। १९२८ में उताका अप्रवा अनुवाद प्रकाशित हुआ। इस समय गांधीजी ने अपन मूल विचारों में कोई परिवर्तन करना जरूरी नहीं समझा। उन्होंने इतना ही कहा कि यदि हो सकता तो मैं दम

मुझसे का मन दुःखनेवाला एक आध कटा गन्ध बदल देता । अंग्रेजी स्वराज्य की प्रस्तावना में उन्होंने कहा है

‘ परन्तु मैं अपने पाठक का ध्यान इस ओर खान तौर में खींचना चाहता हूँ कि आज मरा लक्ष्य वह स्वराज्य नहीं है जिसका वगन इम पुस्तक में किया गया है । ऐसा कहना ठीक है तो मानूँ ही होगा, पर मुझे पक्का विश्वास यही है कि मैं खुद तो उसी स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील हूँ जिसका चित्र इम पुस्तक में खींचा गया है मगर हम सब लोग मिलकर जो काम कर रहे हैं वह भारत के लोगों का इच्छाओं के अनुसार पालामेंटरी स्वराज्य पान का है ।

संसदीय पद्धति में सच्चा लोकतन्त्र नहीं

पालामेंटरी पद्धति का गांधीजी सही चीज नहीं मानते थे । हिंद स्वराज्य में उद्धार का है

इंग्लैंड की इन समय जो हालत है उसे देखकर तो मचमुच दया आती है । और मैं तो देश में मनाता हूँ कि वही हालत भारत की कभी न हो । जिस व्यक्ति पालामेंटरी का भाव है वह इंग्लैंड की पालामेंटरी तो वास्तव में देश है । य दोना गन्ध कट है पर उसपर पूरी तरह लागू होना है ।

‘ पर आज जतना तो सभी स्वीकार करते हैं कि पालामेंटरी के मन्स्य लोग और स्वार्थी होना है ।

जिस देश का ना सदस्य होता है वह उसा ल को आगे मूदकर अपना मत देना है क्याकि अनुशासन के खाल में वह ऐसा करने के लिए लाचार है । अपवाद के रूप में बाइ इममें निबल जाय तो उम बागी जीर उनके काम को बगावन समझा जाता है ।

यही बातें सब जगह की पालामेंटरी या मसदा में होती हैं । ऐसी मसदा और संसद प्रणाली को गांधीजी कस मजूर कर सकते थे, जो कहते थे

‘ केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमी सच्चा लोकतन्त्र नहीं बना सकते । उमका संचालन तो नाच से प्रत्येक गांव के लोगों द्वारा होना चाहिए ’ ।

‘हरिजन’, १८-१-१९४८ ।

‘स्वराज्य का अर्थ है अनेक लोगों द्वारा शासन । जहाँ के जनक लागू दुराचारी या स्वार्थी हो कहा उनके शासन का परिणाम स्वराज्य बनना न सिर्फ —

नहीं हा सकता।' यग इडिया, २८-७-२१

'मैं लोकतांत्रिक हू'

गांधीजी सच्चे लोकतांत्रिक थे। वे कहते थे

'यदि दरिद्रतम मनुष्या के साथ पूण अभिनता स्थापित कर लन स उनमे ज्यादा अच्छो हालत म न रहने की तीव्र आकुलता से और, साथ ही, उस स्तर को प्राप्त करन के लिए पूरी शक्ति से जीर मोच समझकर किए गए प्रयत्ना स किसीको लोकतांत्रिक कहलान का अधिकार मिल सक्ता है, तो मैं दावा करता हू कि मैं लोकतांत्रिक हू।

बाम्बे प्राणिकल १८-६-१९३४

अपनी इसी लोकतांत्रिक वृत्ति के कारण सिद्धांता पर तो नहीं, परन्तु अपने आदर्श और विस्तार के प्रश्ना पर उहोन जीवन भर अपने साथियोके साथ समझीत किए। इसी वृत्ति के कारण ससदीय शासन पद्धति के विरोधी होते हुए भी उहोन उसकी प्राप्ति म महायता को—यद्यपि उह यह आशा अवश्य रही होगी कि स्वराज्य आ जाने पर इस पद्धति म आवश्यक सगोधन और परिवर्तन कर लिया जाएगा। अवश्य इसी आशा पर उहोन अपना चोला छोडने के एक दिन पूव २६ जनवरी १९४८ को कांग्रेस क लिए एक नया विधान तयार किया था जो उहोंने अपन देहावमान के चार घंटे पूव कांग्रेस के महामंत्री को कांग्रेस के सामने विचाराय पत्र करने क लिए दे दिया था और जो १५ फरवरी १९४८ क हरिजन म प्रकाशित हुआ था। यह गांधीजी का आखिरी लेख था इसलिए उनका आखिरी समीपजनामा कहना अनुचित न हागा। पूरे लेख का अनुवां इस प्रकार है

कांग्रेस की जगह, लोक मेवक सघ

भारत क लो सड तो हो गण फिर भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जो तरीक निकाले थे उनस भारत न राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है। इस लिए वनमान रूप म अर्थान् प्रचार के माधन और ससदीय यंत्र के रूप म, कांग्रेस का अब काइ जरूरत नहीं रही। भारत को अब भी सात सारत गावा की मागा त्रिक नतिव और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करनी है। इन गावा की समस्याए छोट बड गह्रा की समस्याआ से भिन्न हैं। भारत जमे-जमे अपने लावनशामक

सदस्य की आर बढ़ेगा वैसे-वैसे नागरिक गणित सैनिक गणित पर कायू पाने के लिए मध्य किए बिना न रहेंगे। इस सभ्य को राजनीतिक दला और माप्रदायिक सस्थाओं की हानिकारिक स्पर्धा स मुक्त रखना जरूरी है। इन कारणों से और इनी तरह क दूसर कारणों से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी निश्चय करती है कि वतमान कांग्रेस सगठन विस्तारित कर दिया जाए और वह निम्नलिखित नियमों के अधीन—जिनमें समयानुक्रम परिवर्तन किया जा सकता है—एक सार सेवक सभ के रूप में पुष्पित तथा विकसित हो जाए

' गाव के या गाव की सान खनबाल पाच वयस्क पुरुषों या स्त्रियों की हर पचासत एक इकाई मानी जाएगी।

इस तरह की दो पाम पास की पचासतें मिलकर अपना एक नेता चुनेंगे और उसके अधीन एक काम करनेवाला जत्या बनाएंगे।

' तब इस तरह की सौ पचासतें हो जाएगी तब उनके पचाम पहले दजों क अपने म स एक को दूसरे दजों का नेता चुनेंगे। इसी तरह होता रहगा। इस बीच पहले दजों के नेता दूसरे दजों के नेता क नीचे काम करेंगे। दो-दो सौ पचासतों क समूह बनत रहेंगे, जब तक कि वे सारे भारत म फल न जाए। बाद की पचासतों का हर समूह पहले क समूह के समान अपने म से दूसरे दजों का नेता चुनेगा। दूसर दजों क सब नेता मिलकर सार भारत के लिए सेवा करेंगे और अलग-अलग अपने अपने क्षत्र की सेवा करेंगे। दूसर दजों के नेता जब कभी जरूरत समझेंगे, अपने में स एक को 'सरदार चुन सकेंगे। वह सरदार जब तक दूसरे दजों के नेता चाहेंगे सब समूहों का नियंत्रण और नतत्व करेगा।

(चूंकि प्रांत या जिले अभी आखिरी तौर पर नहीं बन हैं और अभी बदल चल रह हैं, इसलिए सेवकों के इस समूह का अभी प्रांतीय या जिला परिषदा म बाटन का प्रयत्न नहीं किया गया। जे समूह किसी सार समय तक बन जाए उनका अधिकार क्षत्र सारा भारत रखा गया है। यह ध्यान रखना चाहिए कि सेवकों क इस समूह का जे कुछ अधिकार या सत्ता मिनेगी वह अपन मालिक की उम सेवा स मिलेगी, जो वे खुशो और समझारी के साथ करेंगे। उनका मालिक सारा भारत होगा।)

मेवक के कर्तव्य

१ प्रत्येक कायकर्ता धातन ग्वादी पहननेवाला होगा। यह खादी या तो अपने हाथ में काते हुए सूत की होगी या अखिल भारतीय चर्खासंघ द्वारा प्रमाणित होगी। यह जरूरी है कि वह नशे की चीजा से पूरा परहेज करता हो। यदि वह हिन्दू होता यह जरूरी होगा कि उसने अपनी निजी जिंदगी में या अपने परिवार में हर तरह की अस्पृश्यता को छाड़ दिया हो। यह भी जरूरी होगा कि उस साम्प्रदायिक एकता, सबधम नमभाव और सबका बराबरी, धर्म या स्त्री पुरुष का समान किए बिना समान अवसर और समान दजा देन के सिद्धांत पर विश्वास हो।

२ वह अपने क्षेत्र के प्रत्येक ग्रामवासी से व्यक्तिगत सम्पर्क रखेगा।

३ ग्रामवासियों में से वह कायकर्ताओं की भरती करेगा उन्हें काम करना सिखाएगा और उनका रजिस्टर रखेगा।

४ वह अपने प्रतिदिन के काम का ब्योरा लिखकर रखेगा।

५ वह इस तरह से गांवों का संगठन करेगा, जिससे हर गांव अपनी खेती और दस्तकारी के जरिये अपने परापर खड़ा हो सके और अपना काम अपने आप चला सके।

६ वह गांववालों की सफाई और आरोग्य की गिम्ना देगा और गांववालों में जस्वास्थ्य और रागा को राकन के लिए सब उपाय करेगा।

७ वह हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का तय की हुई नीति के अनुसार नई तालीम के ढंग पर जन्म से लेकर मृत्यु तक गांववालों की गिम्ना का प्रबन्ध करेगा।

८ वह इस बात का प्रबन्ध करेगा जिन लोगों का नाम मतदाताओं की सूची में दर्ज होने से रह गया है वे अपने नाम दर्ज करा लें।

९ जिन लोगों ने मतदाता बनने की कानूनी योग्यता प्राप्त नहीं की है उन्हें वह प्रार्थना करेगा कि वह योग्यता प्राप्त कर लें जिससे मतदान का अधिकार मिल जाए।

१० ऊपर के कामों के लिए और दूसरे ऐसे कामों के लिए जो समय-समय पर हममें बढ़ा दिए जाएं संघ में बनाए हुए नियमों के अनुसार यह अपना कार्य ठीक ठीक करने के लिए अपने का मुद्दा साधना और योग्य बनाएगा।

संघ नीचे लिखी स्वाधीन सत्याग्रहों को अपने माथे मिलाएगा

- १ अखिल भारतीय चरखा सघ ।
- २ अखिल भारतीय ग्राम उद्योग सघ ।
- ३ हिन्दुस्तानी तालीमी सघ ।
- ४ हरिजन सेवक सघ ।
- ५ गो सेवा सघ ।

घन

“अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए सघ गांववाला ने और दूसर लोगो से घन जमा करेगा । इसमें खास जोर इस बात पर रहेगा कि गरीब लोगो से पसा-पसा जमा किया जाए ।

“नई दिल्ली २६ १ ६८

मा० क० गांधी”

कांग्रेस खुदाई सिद्धमतगार, बन जाए

गांधीजी का उपयुक्त दस्तावेज देग के विभाजन पर उनके हृदय की वेदना का प्रतीक है । व इसका आरम्भ ही इन वेदनामय शब्दों से करते हैं ‘भारत के दो खण्ड हा गए ।’ हिंदू मुस्लिम एक्य पर अपने प्राणा की बाजी लगा देनवाले, ‘हिंदू मुस्लिम एक्य ही स्वराज्य है — ऐसा कहकर जिना साहबका सत्ताप कराने-वाले और विषम परिस्थितिया के होने हुए भी भारत की अखण्डता पर अनय विश्वास रखनेवाले गांधीजी नेग के विभाजन से पीड़ित न होत, यह हो कसे सजता था ?

दूसरा ख्याल था कि आखिर कांग्रेस ६३ ६४ वष की कठिन तपस्या और नि स्वाय सेवा के बाद स्वराज्य लाई तो किस रूप में लाई ? क्या यह सब तपस्या गोरे पासक के बदल वाले नामक बठा देने के लिए थी ? यदि स्वराज्य में भारत की अपनी प्रतिमा न हुई, वह गरीब से गरीब और अमीर से अमीर मवके लिए समान बरदान सिद्ध न हुआ, तो वह किस काम का ?

“यदि हम यह चाहते हो कि जनता में जागृति फैल जाए उस अपने सच्चे हिता का ज्ञान हो जाए और उन हिता को सारी दुनिया के विरुद्ध रहत हुए भी पूरा करने की योग्यता तथा शक्ति आ जाए, और यदि पूरा स्वराज्य का अर्थ हमारे लिए यह है कि हममें शक्ति और एवता आ जाए हम भीतर या बाहर के आक्रमण से मुक्त रहें, और जनता की आर्थिक स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार होवे

तब तो हम अपना उद्देश्य राजनीतिक अधिकारों के बिना, और जो शासक मौजूद हैं उनपर सीधा प्रभाव डालकर भी, पूरा कर सकते हैं।" (यग इंडिया, १८-६ ३१)। इस सबके लिए तो हमें पूरा स्वराज्य प्राप्त करने की जरूरत ही क्या है? "अभी बल तब ही तो कांग्रेस बिना जाने राष्ट्र की सेवक बनी हुई थी— वह खुदाई खिदमतगार थी, भगवान की सेवक थी। अब क्या न वह अपने तब और दुनिया के तब घोषणा कर दे कि हम केवल ईश्वर के सेवक हैं—न इससे ज्यादा न कम? (हरिजन १-२ ४८)। उह आशंका थी कि वर्तमान रूप में कांग्रेस न तो ज्यादा दिन जी सकेगी न उसे जीना चाहिए। इसलिए उन्होंने उसकी अब तक की तपस्या को इतिहास में चिरजीवी रखने के लिए उसे भग कर देने की सलाह दी।

गांधीजी का लोकतंत्र

परन्तु गांधीजी का तरीका किसी चीज को मिटाकर केवल रिक्तता पदा करने का नहीं था। विघटन और सघटन साथ साथ चलते थे। नई चीज का हमें गांधीजी का अच्छा होना, सतोपजनक होना, जरूरी था। इसलिए उन्होंने जहाँ एक ओर कांग्रेस को भग कर देने की सलाह दी, वहीं उसे एक लोक सेवक रूप में पुष्पित कर देने का विधान भी बना दिया। इस प्रकार उसे तो सच्चा खुदाई खिदमतगार बनाने का मौका दिया और देना का एक ऐसी सस्था प्रदान करने की व्यवस्था कर दी, जो सच्चे लोकतंत्र को कार्यन्वित कर सके, रूप दे सके। लोकतंत्र के बारे में गांधीजी का विचार उनके इन शब्दों से जाना जा सकता है

'लोकतंत्र के बारे में मेरी धारणा यह है कि उसमें दुबल में दुबल व्यक्ति को सबने समान व्यक्ति के बराबर ही अवसर मिलना चाहिए। यह केवल अहिंसा से ही हो सकता है। आज दुनिया का कोई देश ऐसा नहीं है जो कमजोर के प्रति एका व्यवहार करता है। सभी उसने प्रति सम्पन्न का या प्रतिपालन जसा व्यवहार करते हैं। पश्चिम में आज जो लोकतंत्र चल रहा है वह हलका बनाया हुआ नासीवाद (नात्मोरम) या 'पासीवाद (पासिज्म) है। ज्यादा से ज्यादा वह साम्राज्यवाद की पासीवादी और पासीवादी वृत्तियों को धराने का नयादा मात्र है। भारत सच्चे लोकतंत्र का अर्थात् हिंसरहित लोकतंत्र का विचार करने में प्रयत्नशील है। हमारा अर्थ है मर्यादा जो चरता प्रामोचोग अस्वयता

निवारण साम्प्रदायिक एकता, मद्य निषेध और जैसा अहमदाबाद महुआ है, मजदूरों के अहिंसात्मक संगठन द्वारा अभिव्यक्त होता है। इसका अर्थ है सावजनिक प्रयत्न और सावजनिक गणित। इन प्रवृत्तियों को चत्तान के लिए हमारा पास वही-बड़ा मस्याए हैं। वे शुद्ध स्वयंसेवी मस्याए हैं। उनका सम्बल केवल यह है कि वे दोनतन की सेवा करती हैं। (हरिजन, १८-५-४०)

रामराज्य का आदर्श

गांधीजी ने जपन आत्म स्वराज्य का रामराज्य की मना दी है। सम्भवत यह प्रेरणा टूट तुलसादास के 'रामचरितमानस' म मिली होगी, जिसके वचनपन से ही नकन थ। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में रामराज्य का यह वणन किया गया है (और इसी जागप का वणन वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड संग १३१ श्लोक ६५ १०० तथा उत्तरकाण्ड, संग ६८, इनाक १२ १३ म भी पाया जाता है)

चौ०—राम राज बैठे श्लोका। हरपिन भये एण सब मोका ॥

धमर न कर काहु मन काई। राम प्रताप विपमता छोई ॥

दाहा—बरनाश्रम निज निज धर्म निरत बंद पय ला।

अलहि मग पावाहि मुवाहि नाहि भय मोक न राग ॥

चौ०—अहिंसा दबिध भौतिक नापा। राम राज नाहि काहुहि व्यापा ॥

सब नर करहि परस्पर प्रीती। अनाहि स्वधम निरनश्रुनि नीती ॥

चारिउ चरन धम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहु अध माहीं ॥

राम भगति रत नर अरु नारी। सबन परम गति के अधिकारी ॥

अल्पमद्यु नाहि कदनिउ पारा। सब सुन्दर सब बिम्ब सरीरा ॥

नाहि दरिद्र काउ दुष्पी न दीना। नाहि कोउ अबुधन लच्छनहीना ॥

सब निदम्म धमरत पुनी। नर अरु नानि चतुर सब पुनी ॥

सब गुनग्य पठिल सब स्यानी। भव कृपण नाहि कपट समानी ॥

दाहा—राम राज नमगम मुनु सचराचर जन माहि।

काल कम मुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहि ॥

चौ०—राम राज कर मुक्त सम्पना। धरनि न सञ्ज पनीस सारदा ॥

भय उदार भव पर उपकारी। विप्र चरन सबक नर नारी ॥

एव नारि व्रत रत सब भारी । ते मन बच प्रम पति हिनारी ॥
 दोहा—दठ जति द कर भेद जहे ननक नत्य समाज ।
 जीतहु मनहि सुनिअ अम रामचंद्र के राज ॥
 चौ०—फूलहि फरहि सदा तघ कानन । रहहि एक सग गज पचानन ॥
 पग मग महज बयर बिमराई । सबहि परम्पर प्रीति बढ़ाई ॥
 बूजहि पग मग नाना बदा । अभय चरहि दनकरहि अनन्दा ॥
 सीतल मुरभि पवन यह मदा । गुजत अलि न बलि मकरदा ॥
 लता बिटप मार्गे मधु चबही । मनभावता धेनु पय खवही ॥
 ससि नम्पन मदा रह धरनी । प्रता भद्र कृतजुग क बरनी ॥
 प्रगटी गिरि हबि विषमनि खानी । जगत्गतमा भूप जग जानी ॥
 सरिता मनल बहहि बर बारी । सीतल अमा स्वाद सुखवारी ॥
 सागर निज मरजादा रहही । डारहि रत्न तटटि नर लहही ॥
 सरसिज सकुल सरुत तडागा । अति प्रसन दम दिसा त्रिभागा ॥
 दोहा—बिधु महि पूर मयूरि ह रवि तप जेतनेहि काज ।
 मांग वारिद रहि जल रामचंद्र के राज ॥

(सबलिन रा० च० मा०, गीता प्रेम उत्तरवाण्ड, दाहा १६ २३)
 यह ता गोस्वामी तुलसीदास की कौी हुई भक्तिमय कल्पना है परन्तु सम्पूर्ण
 रामचरितमानस (और वासोदर रामायण) पत्रन पर रामराज्य की जा छवि
 मन म उतरती है वह वपनातीत है केचन अनुभवगम्य है । परन्तु इस वपन म
 भी धार्मिक सामाजिक नतिर रात्रीतिक, आर्थिक गाम्भृत्तिक आदि सब पह
 नुआ की छवि मित्र जानी है और मन उस राज्य म रहने के लिए उदानें भरन
 लगता है । गांधीजी इसी रामराज्य का धरती पर—भारत की धरती पर—
 उतारना चाहते थ, जो अस्तोत्रिक तत्त्वा की छोरकर उहे मभव भा दीवता था ।
 साधारण मनुष्य के समभने योग्य भाषा म उहोन अहिंसा पर आधारित स्वराज्य
 का मट समानान्तर चित्र छाया है

गांधीजी का स्वराज्य

अहिंसा पर आधारित स्वराज्य म बाई किसीका मनु नहो होला ।
 प्रत्येक ब्यक्ति सबसामान्य सत्य की सिद्धि म उचित योगदान करेगा । सब

लोग लिखना पढ़ना जानते होंगे, और उनका पाठ दिन प्रति दिन बढ़ता रहेगा। रणता और रोगों का अधिक से अधिक घटा दिया जाएगा। कोई रक न होगा। बिहन्त करनेवाला को सदा काम मिल सकेगा। जुआ, मद्य पान और व्यभिचार के लिए ऐसे राज्य में कोई स्थान न रहेगा। वग विद्वेष भी न रहेगा। धनी लोग अपने धन का उपयोग समझदारी के साथ और लाभप्रद कामों में करेंगे, अपना ठाटवाट और भोग विलास के साधन बढान में उसे बहाएंगे नहीं। यह नहाना चाहिए कि मुट्टी भर धनी लोग तो रत्न जटित महला में रहे और करोडों का साधारण दयनीय घरों में, जिनमें न तो सूय का प्रकाश पहुँचता हो, न हवा ही मिलती हो। अहिंसामय स्वराज्य में किसी अत्यायुक्त अधिकार को हडपना नहीं जा सकता। दूसरी ओर कोई व्यक्ति अत्यायुक्त अधिकार नहीं रख सकता। एक सुमगठित राज्य में दूसरों के अधिकारों को हडपना असम्भव होना चाहिए। यह स्थिति ही नहीं होनी चाहिए कि किसी हडपनवाले से फिर अधिकार छीनने के लिए बल प्रयोग की जरूरत पड़े। ('हरिजन', २५ मार्च, १९४६)

इस सर्वांग सम्पूर्ण और कल्याणकारी राज्य में, जिसकी योजना एक एक व्यक्ति के सुख के लिए है सखीय स्वायत्त सघन का, पारस्परिक लड़ाई भगडों और गुटबन्दियों का, वग जाति धर्म पर आधारित विद्वेष को, प्रादेशिक विस्तारवाद तथा भाषा और सस्कृति के नाम पर छीना भपटी का, उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम के एक-दूसरे पर आक्रमण को, क्या स्थान हो सकता है ?

गांधीजी का यह स्वप्न अब तक पूरा नहीं हो सका परन्तु भविष्य में भी पूरा नहीं होगा, यह कहना दुःसाहस है।

ग्यारह

स्वराज्य और सविधान

स्वराज्य जाया तो सोन व घान म सजवर पूजा गारती और मधु मिष्टान के प्रसाद क माय रही, लाखा नारतीया के भार्द भाद्रमा क—जा एव क्षण मे भार तीया और पाकिस्तानिया के दो स्वतंत्र राष्ट्र म विभाजित त गए थ— स्वत की नदी म तरता हुआ आया। इतनी सरनता से महावाली का गप्पर कभी न भरा होगा। इतन लाग क निष्क्रमण निष्क्रमण उत्पापन और पुनर्वाम की रक्ताश्रु मय गाथा इतिहास म सी कही पाई नहीं जाती गायद भविष्य म भी मानवजाति ऐसी स्मृति कायम रखने म मिहूर और लज्जा म अपना मुह ट्य ल।

कश्मीर पर आक्रमण

और महाशय म कि जब सबसहा यमुधरा व बक्षस्थनपर लक्ष लग निर्दोष श्रिया बच्चा और पुरपावा स्वत मूला भा नहीं था कश्मीर पर सनिक आक्रमण हा गया और जो थोड-थ अवाछिन वम गोल और तारे ब्रिटिश दासव दग के इन दाना खडा म छोड गए थे व कश्मीर की घाटी और उसके ऊंचे हिमशिखरों पर गडगड़ान लगे। जो अग्रज भारत का गान्तिपूवक त्याग कर इतिहास म एव अभूत पूव अध्याय जोडने की डौंडी पीदत थव रहा रहे थे उनक भार्द-बद टोक उमी समय कश्मीर की भूमि पर पाकिस्तानी सनाथा का सगठन मचावन और निर्दोष वरने मे व्यस्त थे। पाकिस्तान के अन्दर उनका साम्राज्य अब भी कायम था और व भारत की जनता म तिमो उट्ट दग छानन व लिए बाध्य बिया, बदला लेने पर तुले शिखरार्द पहन थ।

भारत क तो नेता तीस वष से अहिमा का आराधना और गान्ति की पुकार करन-करत अब बूढ़े हो चले थ और जिनन हृदय स्वाधीनता की प्रथम प्रमादी स पद ही हिन चुव थ व उन्नि हा उठ और मयुवन राष्ट्रसभ की सता और

साधुओं का अगाड़ा समझकर बीच त्रिचाक के लिए उसके पास दौड़े, और जब भारतीय सना और आप्रमणकारियों के पूण परिपात के बीच वेद न चांग्गिना का अन्तर दियलाई पडन लगा था, उन्होंने समुक्त राष्ट्रसघ की ब्रिटिश प्रेरित इच्छा तथा विचवानीस अपनी सेना व शस्त्र गोकलेना स्वीकार कर लिया जिससे कश्मीर की ज्वाना को शास्वत रूप प्राप्त हा गया। अत्र वह क्व और कितना महार कर्क गा न होगी यह तबल भविष्य ही बता सकता है।

विभीषिकाओं का अय

इन सब भीषण घटनाओं से एक महत्त्वपूर्ण बात स्पष्ट होती है। मुसलमानाने मुस्लिम नेताओं तथा मुस्लिम लीग के राजनानिक और कूटनीतिक विरोध इस्लाम की दुहाइया और ब्रिटिश क प्रात्माहन के कारण 'हिन्दुओं का अहिंसा तथा शांति का भाग आम तौर पर कभी स्वीकार नहीं किया था। उनकी सामाय नीति विरोध और सघष की ही रही थी और उन्होंने ब्रिटिश शासक के टूपा भाजन बनकर, उनका त्ति-साधन करत हुए हिन्दुओं के विहृद्ध छरा का प्रयोग करन का कोई अवसर हाय से जान नटा दिया था, यद्यपि इस धार कृत्य के लिए गहरा के निवासी मुसलमाना का ही बडी मर्याम मठकाया जा सका था। गावा म रहनेवाने मुसलमानान इस राजनीति स कार् वास्ता नहीं रखा और व हिन्दुओं के माय पूरे भाईचारे क साथ रहत रह। दूसरी ओर, हिन्दू सामायत शान्तिप्रिय हैं। उनके घम, दगन और सतो ने उहे शांति की ही गिशा दी है। इसलिए उनक भगडे बहुधा तात्कालिक उत्तेजना के परिवायक होत ये और जल्द शान्त हो जात थ। इनके अभावा, गाधाओं के नेतृत्व म थ पिछल तीस बर्षों स अहिंसा का पाठ पढ रहे थे। इतन पर भी उन्होंने इस सधि-काल म मुसलमानों से जो भीषण यन्त्रा लिया उनम मालूम होता है कि उन्होंने अहिंसा का पाठ हृदय से नहीं, ताता रटत की भांति कवल जिह्वा स और, अधिक स अधिक व्यावहारिक बुद्धि से पडा था।

सविधान यादश और भावना

इन सब विषम परिस्थितिया म भारत की राजधानी त्तिनी म भारत की सविधान सभा दग व राजकाज क सचालन और नव निमाण के लिए शीघ्र मे शीघ्र एक सविधान बनान म निरत थी। इस काय मे अनेक महत्त्वपूर्ण आवश्य-

बनाया या ध्यान रखा गया था ? सविधान को अधिक से अधिक लाकूट हितकारी बनाने के लिए सविधान सभा में सब पक्षा और सब विचारों के योग्यतम प्रतिनिधियों को एकत्र किया गया था । २ सविधान का ध्येय ऐसा तय किया गया था जिससे गरीब अमीर सब लोगों को बिना धर्म, जाति अथवा वंश के भेद भाव के स्वराज्य का पूरा लाभ मिले । प्रत्येक देशवासी का अपने राज्य का सहासन करने में योग्य होना अनिर्णय और विच्छेद हुए लोगों को सम्मेलन और अपने देशवासियों के स्तर पर उन्हें जाने की विशेष सुविधाएँ मिलें । स्त्री समाज की उन्नति हो जाय । ३ निर्विवाद व्यापक, सरल प्रतिपाद्य और फिर भी सरल सविधान बनाने के लिए कानून और सविधान के ऊँचे से ऊँचे पण्डितों का यह कार्य सौंपा गया और उन्हें ऐसे लोगों की सहायता दी गई जो अपनी लाजनेवा के कारण न केवल देश की विभिन्न परिस्थितियों से परिचित थे बरन् मूल सम्प्रदायों, सब धर्मों सब प्रायश्चित्तों के प्रति समदृष्टि सदभावना और सहानुभूति रखने के लिए प्रसिद्ध थे । ममविदा बनानेवाली समिति के अध्यक्ष ए० भाग्यराम अम्बेडकर भाग्य हुए जो दक्षिण जातियों के पक्ष के उत्तम समर्थक थे और यह माना ही नहीं था कि हिन्दू समाज के अग्रगण्य रहने वाले दक्षिण जातियों का सत्त्वात्प्राण ही सारता है । उन्हें अध्यक्ष बनाने का अवसर दिया गया कि वे दक्षिण जातियों के हित में जसा सविधान बनाना चाहें बना लें । इससे सायं ही उन्हें भारत का अधिकारी भी बनाया गया, जिसमें जा-बुद्ध सविधान में आने से यह जाना जा सविधान में अस्पष्ट रह जाय उनका वसति धर लें । ४ सविधान की धर्म नीति बन जाय और उनके अनुसार देश का राजकाज चलने लग । जिसमें जनता का स्वराज्य का उदाहरण टडा पठन के पक्ष ही नवनिर्माण का कार्य आरम्भ हो जाय और देश कम से कम समय में आत्मनिर्भर बनकर समार के राष्ट्र में अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके और मानव-जाति के उत्थान में अपना पूरा योग्य देन लगे ।

इन आदर्शों के अनुसार, और इन परिस्थितियों में जा सविधान बना और २६ जनवरी १९५० का देश में लागू किया गया उसने सबसे पहले भारत को 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' घोषित किया । उसकी बुद्धि मुख्य विधाएँ ये हैं । १ उसका उद्देश्य उसकी प्रस्तावना में यह बताया गया है, 'हम, भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उनका सम्पूर्ण नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और

राजनिक याद, विचार, अभिप्रेत विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सर्वमव्यक्ति का गरिमा और राष्ट्र का एकता सुनिश्चित करनेवाला बंधुता बढाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर इस सविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मपित्त करण है। २ इन लक्ष्या की सिद्धि के लिए जो व्यवस्थाएँ सविधान में की गई हैं उनमें से कुछ ये हैं

सविधान की मुख्य व्यवस्थाएँ

(क) भारत एक गणराज्य होगा जिसका अर्थ है कि उसका प्रधान शासक कोई राजा नहीं जनता द्वारा नियमानुसार निर्वाचित राष्ट्रपति होगा।

(ख) भारत राज्या का सब होगा जिसमें हर राज्य अपने अपने क्षेत्र की उत्तमि करने का और उसका दनदिन शासन चलाने का जिम्मेदार होगा। राज्यों को केंद्रीय सरकार के विषयो को छोड़कर शेष सब विषयो में अपने अपने ढंग से राजकार चलाने का अधिकार होगा। केन्द्र उनकी प्रवृत्तियो में आंतरराज्यीय समन्वय और सामंजस्य स्थापित करेगा। समग्र देश से सम्बन्ध रखनेवाले कामों में केन्द्रिय सरकार उनका मार्गदर्शन करेगी। कृषिपय सावदगीय बाजारों की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार की ही होगी—उत्पाहरण के लिए, देश की सुरक्षा बदेशिक नीति वचनानि शोध आदि।

(ग) सस्रीय शासन पद्धति का केन्द्र और राज्या, मन्त्रों लिए स्वीकार किया गया है। इसके लिए हरएक व्यक्ती का मताधिकार प्रदान किया गया है जो प्रहून बड़ साहस का काम होत हुए भी अनुभव से सकन विद्ध हुआ है।

(घ) शासन का धर्म निरपेक्ष घोषित किया गया है, जिसका अर्थ है—शासन किसी धर्म के काम में हस्तक्षेप नहीं करेगा। वह न तो स्वयं किसी धर्म विपय का पालन करेगा न विरोध करेगा, न पशुपाल करेगा। सारासन मानव धर्म ही उसका धर्म होगा जो उसके इस मुद्रावाक्य से प्रकट होता है—'सत्यमेव जयते'।

नागरिकों के मूल अधिकार

(ङ) उसमें सब नागरिकों के मूल अधिकार सुरक्षित कर लिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं समता का अधिकार, इसका अनुसार किसी भी नागरिक का किसी

से उत्पन्न हुए भयानक सक्कट, कश्मीर में हुए पाकिस्तानी आक्रमण और अन्तरिम काल में मुस्लिम लीग के विरोध तथा उसका द्वारा खुल्लमखुल्ला भड़काए और बढ़ाए गए उपद्रवों की भूमिका से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसका विस्तार, बृहत क्लेशों के साथ साथ ही निर्देशक तत्त्वा का निर्देश और राज्य के अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबंध—ये सब सावधानियाँ बताती हैं कि सविधान के निर्माण में राष्ट्रीय जीवन के अनुभवों से काम लिया गया है। या, या वही कि 'दूध का जला छाछ का फूक फूक कर पीता है' इस कहावत को चरिताय किया गया है। कुछ सविधान-मंडिता ने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है, कुछ ने कड़ी आलोचना की। परन्तु समग्रतः देखा जाए तो वह सर्वांग-सम्पूर्ण है एक विशेष विचारधारा का अनुसार हमारे देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

सवांगीण व्यवस्था

उत्तम धार्मिक, सामाजिक नैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के सभी पहलुओं पर विचार करके उनकी व्यवस्था की गई है।

'राज्य के निर्देशक तत्त्वा में समाजवाद के तत्त्वा का स्पष्ट प्रतिपादन है। लोकतांत्रिक शासन पद्धति का त्याग होने के कारण वह आप ही आप लोकतांत्रिक समाजवाद का रूप ले लेता है।

धर्म निरपेक्ष राज्य होने के कारण अब तक के साम्प्रदायिक द्वेष भाव का अन्त हो जाना संभव है। पाकिस्तान के नेताओं को तो जिन्होंने भारत विरोध में ही अपना कल्याण समझ रखा है, भारत के मुसलमानों को भारत राष्ट्र में घुसा मिला लाने की यह व्यवस्था आसानी से किरकिरी मालूम होगी क्योंकि इसमें उनके मुस्लिम राष्ट्र के दावे को धक्का पहुँचता है और उनकी तथाकथित इस्लामी राज्य-व्यवस्था में पाकिस्तानी-वासी हिन्दुओं के साथ भेदभाव का और सत्कार का सामना उनकी बड़ी बड़ी घायल आत्मा का उद्घाटन असली रूप में प्रकट हो जाता है। परन्तु भारत के मुसलमानों ने इसका स्वागत किया है और इसका अर्थ में सुख और अपनापन अनुभव किया है। पाकिस्तान के साथ कश्मीर, पंजाब और राजस्थान-भीमा में जो युद्ध हुआ था, उत्तम भारत के मुसलमान सैनिकों और अधिकारियों ने पराकाष्ठा की शीरता दिखाई थी, वह इसका ज्वलंत

प्रमाण है।

हरिजना और पिछड़ी हुई जातियों ने गांधीजी के जीवन काल में राहत का जो आश्वासन पाया था, वह सविधान द्वारा पुष्ट कर दिया गया है। अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया जाना इस बात का परिचायक है कि हिन्दू समाज अवसर आने पर ऊँचे उठने की क्षमता बिल्कुल ही नहीं खो बठा। इससे अब शेष हिन्दू समाज के साथ उन सब जातियाँ तथा वर्गों की एकता में हार्दिक प्रेम की न सही, फिर भी हार्दिक सदभावना की मुहर तो जरूर लग गई है। पहले ये सब वर्ग दबे हुए थे, इसलिए सबके हिन्दुओं के अत्याचारों का मुकाबला करने के लिए खड नहीं होत थे। अब सतुष्ट हैं, इसलिए मुकाबले की जरूरत नहीं रही। सदभावना धीरे धीरे प्रेम का रूप लिए बगर नहीं रहेगी। परन्तु यह विचार करने पर कि ये शताब्दियों से अत्याचारों के मारे हुए हैं और दीर्घ काल से दलित जीवन बिताते बिताते अब उसे ही अपना स्वाभाविक जीवन मानने लगे हैं ऐसा लगता है कि इनकी पूरी उन्नति में अभी बहुत समय लगेगा।

आज इनके सामने समाज के दुर्व्यहार की समस्या खतनी बड़ी नहीं रही, जितनी बड़ी आर्थिक समस्या है। समाजवाद के कार्यान्वित होने से इनकी हालत सुधर सकती है। आर्थिक स्थिति सुधरे तो स्वच्छता, गिना और रहन-सहन का स्तर में आप ही सुधार हो जाएगा। जो व्यवसाय-व्यवस्था सदियों से इनके भाग्य में मड़ी है वह भी आप ही आप बदल जाएगी। अर्थात् समाजवाद का सर्वम अधिक लाभ इन्हें ही मिलना चाहिए।

स्त्रियों को समान दर्जा

स्त्रियाँ का भी सविधान में पुरुषों की बराबरी का दर्जा देकर देग की अधूरी लोकशक्ति को पूरा कर लिया गया है। सब वयस्क स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया है जिसके लिए इंग्लैंड में इसी गतादी में स्त्रियों को संगठित होकर उग्र आन्दोलन करना पड़ा था, अगणित उपद्रव हुए थे अगणित स्त्रियाँ को जेल जाना पड़ा था। समान काम के लिए स्त्रियाँ और पुरुषों का पारित्यमिक भी बराबर कर दिया गया है। स्त्रियों की उन्नति सं देश की चतुर्मुखी उन्नति में जो योग मिलेगा उसके महत्त्व का अनुमान आज लगाना कठिन है। परन्तु गान्धि तथा सद्भावना के प्रसार और वास्तविक स्थिति का दृष्टि से चिन्तन में बहुत

मदद मिलेगी इसमें शका नहीं मालूम होती। आधी मानवजाति के प्रति चाय का यह काय सदिया से रुका पड़ा था। गांधीजी ने स्त्रीजाति को जगाने में बहुत सफलता पाई थी और उनके उत्तराधिकारिया तथा शिष्या न पहला अवसर हाथ लगते ही उसपर सविधान की जो मुहर लगा दी वह उनकी ही मुहर समझी जाएगा। स्त्रियों के लोकजीवन में अधिकाधिक भाग लेने से, बहुत संभव है, एकता स्थापित करने और भगदोरी को मिटाने में भी बहुत मदद मिलेगी।

सविधान ने ससदीय शासन प्रणाली का वरण किया है। इसमें गुण भी है, भयानक दोष भी। दोष दला और चुनावों से सम्बन्ध रखते हैं। यदि उन्हें दूर करने का कोई उपाय खोज न निकाला गया तो जिस ससदीय प्रणाली को आज आदर, आशा और विश्वास के साथ अपनाया गया है वह हमारे लिए एक अभिशाप बन जायेगी जिसके कुछ चिह्न अभी ही प्रकट होत रहते हैं।

व्यस्क मताधिकार की व्यवस्था होने के कारण पहले चुनाव (१९५२) में लगभग १८ करोड़ मतदाताओं की सूची बारी गई थी। बाद में चुनावों में यह सूची बढ़ती ही गई। परंतु अधिकतर मतदाताओं के निर्णय होने पर भी पहला ही चुनाव बहुत व्यवस्थित हुआ। संसार उसके समाचार पढ़कर आश्चर्य में डूब गया था।

नारे देग में निर्वाचित ग्राम पंचायतों भी स्थापित कर दी गई हैं। वे अपने क्षेत्र में लोक-व्यवस्था का काय करती हैं।

गुटा से अलग रहने की नीति

सविधान का अप्रत्यक्ष हाथ भारत की गुटा से अलग रहने की विधि नीति में भी दिखाई देता है। भारत लगभग डेढ़ सौ वर्ष के ब्रिटिश शासनकाल में अपनी अरपतन समझ स्थिति से भयानक दरिद्रता के मन में गिर चुका था। स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय सरकार के सामने सबसे बड़ी समस्या यह उपस्थित हुई कि देग की ४०-४५ करोड़ जनता के भोजन वस्त्र की समस्या कस टूट की जाए। इसके लिए उनमें पंचवर्षीय योजनाएं बनाई। इन बड़े देग को कम राशियों में समय में जावा की आवश्यकता उपलब्ध कराने और उम जात्मनिभर बना देने के लिए बहुत बड़ा योजनाओं की जरूरत थी। उनमें लिए १ केवल धन, बल्कि मशीन और तकनीकी ज्ञान की भी जरूरत थी। इसलिए भारत को हमारे सम्पूर्ण देगों से सहायता मांगना

पड़ी जो अधिकतर लम्बी अवधि के ऋण, तकनीकी ज्ञान और मशीनरी के रूप में होती है।

भारत को यह मदद सभी में लेनी थी। वह मानता था कि जो राष्ट्र दूसरों का शोषण करके सम्पन्न हुए हैं उनका धर्म है कि वे शोषित राष्ट्रों के उत्थान के प्रयत्न में बिना अहसान के मदद करें। लोकतन्त्री देशों का इसमें हित था कि यदि वे भूगर्भ और नये लोगों को मदद करेंगे तो वे साम्यवादियों की शोषण में न जाएंगे। साम्यवादियों का हित था कि उन्हें उबरा भूमि में अपनी विचारधारा के बीज डालने का अवसर मिलता था और वे यह आशा कर सकते थे कि समय आने पर वे भूख-नाश लागू हमारी भाषा बोलने लगेंगे। इधर भारत का आदेश यह था कि दोनों गुटों में अलग रहकर, दोनों में सह-अस्तित्व की भावना जाग्रत करके और दोनों का एक दूसरे के निकट खींचकर विश्व में शान्ति की भावना दृढ़ की जाए। इसलिए उसने दोनों से बिना किसी राजनीतिक बंधन के सहायता मागी, और ली। इससे भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पत्तियाँ अशुष्क रही, उसे आन्तरिक राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करने का अवसर मिला, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी और अन्य राष्ट्रों के साथ मत्री सम्बन्ध स्थापित हुए। अप्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि किसी एक गुट में शामिल न होने के कारण उसे दूसरे गुट का राप भाजन नहीं बनना पड़ा जिससे उसके विकास में बाधा पड़ती। शीघ्र ही उसकी गुटों में शामिल न होने की नीति अत्यन्त सफल रूप से अपना ली। जो बड़े देश पहले इस नीति को शक की दृष्टि से देखने से वे भी आज इसका आदर करने लग हैं।

लोकतान्त्रिक समाजवाद

लोकतान्त्रिक समाजवाद का आदेश जो सविधान से ही उद्धृत होता है वास्तव में बहुत कठिन है। उसे प्राप्त कर सकना संभव नहीं दीखता। परन्तु राष्ट्रीय सरकार उसकी ओर बढ़ने का यथामुमक प्रयत्न कर रही है।

इन मध्यम प्रयत्नों के होते हुए देश में पारस्परिक संघर्ष, खींचताली, भ्रष्टाचार, अदक्षता, मनुष्यवैयर्थ्य तथा महत्वाकांक्षियों, सत्ता राजनीति, गरीबी और भूख का नया नाच हो रहा है। सब कुछ असंतोष फैला हुआ है। यह क्या? कब दूर हो? सब लोगों का ध्यान देश की उत्थान पर कैसे लगे?

वारह

स्वराज्य की समस्याएँ

स्वराज्य का उदय जिन विपम और घोर परिस्थितियों में हुआ उह दुःखाना आवश्यक नहीं है। गांधीजी के नेतृत्व में दंगन गत्य अहिंसा, 'याय प्रेम और सेवा का जो पाठ पढ़ा था उस वह सबट आन पर भूल गया और बाद में उमकी ओर फिर नहीं मड सता। कर्त्ताचिन अब उस याद करन में लम्बा समय लगगा या फिर किसी खारदार ठोकर की आवश्यकता हागी।

भारत की राष्ट्रीय सरकार तथा नताआन अपनी और देग की गवित की मर्यादाएँ महसूस करके स्वराज्य का रथ उस दिगा में चलाना उचित समझा जा मूलभूत तुरत आवश्यक और सारी दुनिया में बहनवाली हवा में सरल तथा स्वाभाविक मालूम होता था। अर्थात् उष्टान जापिक म्पति सुधारने की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया। धम को तो स्वराज्य-संचालन क क्षेत्र से अलग कर ही दिया गया था कदाचिन आर्थिक प्रयत्ना और दनदिन समस्याओं में असाधारण व्यस्तता के कारण चारित्र्य निर्माण तथा चारित्र्य पोषण की उपेक्षा भी हो गई।

जय तक हम स्वराज्य की लढाई लड रहे थ हमार सामन त्याग तप, सेवा वसिदान आदि का ही लक्ष्य था और उसीमें हम डूबे रहना पन्ता था। समाज क आदर और विदेशी सरकार के कोप के सिवा पान को कुछ पा ही नहीं। खीने को सभी कुछ था—शिक्षा, रोजगार धधा, धन सम्पति परिवार का सुख, स्वास्थ्य, देग के अदर विवरण की स्वतन्त्रता, और क्या नहीं।

स्वार्थों का उदय और सघप

स्वराज्य के आगमन से लागा को कुछ पाने का आगा हुई। बहुल-स नोगा न अपनी सवाओं को भजाना चाहा। जिन्हान सवाण नहीं की थी, उतट स्वराज्य

सधय का सदा विरोध किया था, उनमें से भी बहुत-से लोग खादी के कपड़े पहन-कर और झूठे दावे पेश करके देशभक्ता, सेवकों, त्यागिया, बलिदानिया की श्रेणी में जा बैठे। और कुछ पा लेने का सधय गुरू ही गया।

अवसर था ही। जब दंगभक्त जिला में सड़ रहे थे उस समय उन्होंने काफी धन भी कमा लिया। अब और कुछ नहीं था ससद, विधान सभा या विधान परिषद की सदस्यता ही। मंत्री हाँ जाएँ तो पाचा अगुलिया भी मरहगी, न होंगे ब्रा भी कुछ अधिकार, मान-सम्मान, कुछ साध सकने का अवसर तो मिलेगा ही।

जिन पवित्र सस्थाओं—ससद, विधान-समाज, विधान परिषदा मन्त्रिमंडल आदि में स्वायत्याग की आवश्यकता थी उनमें अत्यंत स्वय की यह भावना आ गई। आगे चलकर इस वृत्ति में छोटे स्वाय स बड़ था, फिर उससे बड़े को साधन का लगातार बढ़नेवाला रूप धारण कर लिया। जो सीधे मन्त्र दंगभक्त थे वे दब गए और चलते पुर्जों या धूतों का पलड़ा भारी हो गया। उन्होंने काम आनेवाली जगहों और पगों पर अपने भक्तों और भाई भतीचों का जमाना शुरू किया। इसमें उनकी योग्यता का भी पूरा खयाल नहीं होता था। असल में उनकी स्थिति मजबूत हुई, परंतु काम में अक्षमता और लापरवाही का सूत्रपात हुआ। फिर उन्होंने आपस में गुटबंदिया करके सामान में सधय पदा करके, दूसरों को गिराकर ऊँचे अधिकार के पद पर पहुँचने का सिलसिला शुरू किया।

जब स्वाय और महत्वाकांक्षाओं की यह वृत्ति प्रबल और प्रचंड हुई उसी समय आर्थिक विकास योजनाएँ भी गुरू हुईं। रुपया पानी की तरह बहने लगा। भारी रकमा के खर्च के बड़े बड़े काम हाथ में लिए गए। अब स्वार्थी लोगों का ध्यान रुपया बटोरने की ओर गया। ठेका देने में, लाइसेंस देने में, रुपयों की मदद में—सब जगह स प्रत्यक्ष या परोक्ष रिश्दता का दौरादोग शुरू हो गया। और ये देशभक्त इस तरह के आत्मसत्ता काय में गलत तक डूब गए।

व्यापार में अनैतिकता

दूसरा था व्यापारी समाज। ब्रिटिश-काल में उसके व्यापार का केवल एक घम रह गया था—रुपया कमाना, ईमानदारी से या बेईमानी से, जैसे ही रुपया कमाना। जबान व्यापारी घमभीरु वृद्धि पाना से बहता था—'यह तो व्यापार है पिनाजी इसमें सत्य, घम आदि की बात न कीजिए। वह सब अलग होता रहेगा।

रपया बमा सैं, फिर हम आपने नाम से पोशाला, मन्दिर, धमंगाला आदि, जो आप कहेंगे, बनवा देंगे।” यह समाज उसी समय से रिश्वतें देकर सौगुना लाभ उठाने का अभ्यस्त था। इसने राजनीतिज्ञ और अन्य अधिकारियों के घर भरने शुरू कर दिए, राजनीतिज्ञ तथा अधिकारियों ने इसका पोषण करना शुरू किया। इस प्रकार भ्रष्टाचार का दुश्चक्र चल पडा। परिणामतः चोरबाजारी मुनाफा खोरी, मिलावट आदि का बोलबाला हो गया। मौदा दो म से किसी पग को महगा नहीं पडा। धन धूर्तों के हाथ म सिमटने लगा। सीधी सच्ची, असहाय जनता इस चक्की म पिसने लगी। कोई दमकी भार से बच न सका।

भ्रष्टाचार का दौर-दौरा

यह सब देखकर छोटे अधिकारी और कमचारी भी ललचाए। उन्होंने काम मे हीलाहवाला करके रिश्वतें लेना शुरू किया। जिन्हें रिश्वतें लेने का अवसर नहीं था उहाने एक ओर ता काम मे डिलाई और लापरवाही करनी शुरू की, दूसरी ओर वेतन वद्धि क लिए सघप गुरू कर दिए।

इस प्रकार राज्य-तंत्र भ्रष्टाचार, काम म लापरवाही अदम्यता आदि म डूब गया। जिस काम के लिए रिश्वत न दी जाए या दजना बार दफनरा के दरवाजे न खटखटाए जाए वह ही ही नहीं सकता। बार बार आपकी अजिया गलत हो जाएगी बार-बार आपको भिन्न भिन्न अफसरों से मिलना पडगा, बार-बार वही वही बातें आपसे पूछी जाएगी। बार बार आपको जिम्मेदार कमचारी छुट्टी पर या 'चाय पीने गया हुआ मिलेगा। और अंत म महीना की दौड धूप के बाद, आपसे कहा जाएगा—“यह तो नहीं हो सकता या यह तो छ महीने पहले ही हो जाना चाहिए या।”

बहुत से विभागा मे ता भ्रष्टाचार 'हक' के रूप म सुल्लमखुल्ला और सगठित तौर स चलता है। सभी जानते हैं पर करता कोई कुछ नहीं।

सभी भ्रष्टाचारी हो सो बात नहीं। बहुत से लाग अन भी धम की और अतरात्मा की आवाज का अनुसरण करते हैं। परंतु ऐसे लोग यदि भ्रष्टाचारिया के बीच म हुए ता उनका जीवन दूभर हो जाता है।

इस प्रकार भ्रष्टाचार की यह शृंखला धूत देगभवता और व्यापारी समाज से शुरू होकर सारे राज्यतंत्र और समाज म फली है। समाज की नतिक गति

और उसके सदाचार का पतन करने में इसका मुख्य हाथ है। इसे मिटाना देश के सामने पहला काम है। यह पहली समस्या है। अब तक न इसे गहमत्री पूरी तरह पकड़ पाए हैं न उनका केंद्रीय स्तुफिया विभाग ही इसका उन्मूलन करने में सफल हुआ है।

• विविध प्रकार की गरीबी

दूमरी बड़ा समस्या है गरीबी की। यह बहुत कुछ तो वास्तविक है कुछ सापेक्ष है। उद्योगों की इतनी वृद्धि और धन का इतनी बड़ी मात्रा में विनिमय तथा विनियोग होने पर भी करोड़ों लोग ऐसे हैं जिन्हें इसका लाभ नहीं मिला। उन्हें अब भी पेट भर भोजन और नग्नता ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध नहीं हैं। उनकी गरीबी मन्वी है निल दहला देने वाली है। वास्तव में देश में गरीबी की समस्या इतनी बड़ी है कि उस इतने थोड़े समय में वर्तमान तरीका और साधना से हल कर लेना असम्भव सा है।

दूमरे लोगों की गरीबी का अर्थ यह है कि उन्हें आमपास के या अन्य लोगों के बराबर सुविधाएँ नहीं मिलती। इस गरीबी के विभिन्न स्तर हैं, जिन्हें क्रमिक विभागा में बाटा नहीं जा सकता। कुछ को रूखा सूखा भोजन और तन ढकने की जरूरी वस्त्र मिल जाते हैं, कुछ को बच्चा की शिक्षा की सुविधा भी थोड़ी-बहुत मिल जाती है। कुछ का भोजन, वस्त्र, निवास, शिक्षा और स्वास्थ्य की कम ज्यादा सुविधाएँ मिलती हैं। इसी तरह इन 'गरीबों' का समाज बढ़ता-बढ़ता चला तक पहुँचता है, जहाँ कुटुम्ब के मुख्य पुरुष का हज़ारों रुपया की मासिक आय होती है, परन्तु उसके पास सड़क में काम आने के लिए अपने पास पचास रुपय भी नहीं होते, या वह अपने बच्चे का इलाज कराने के लिए उसे अमेरिका यूरोप या रूम नहीं ले जा सकता। ये सब एक-दूसरे से गरीब हैं और अपने से ऊपर वाले की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए सालावित रहते हैं। यह हालत सार समाज की है। इस सापेक्ष गरीबी का कारण वह आर्थिक विचारधारा है, जो अग्रजों के आने के बाद में हमारे बीच यूरोप से आते और जिसका मूल यह नितान्त भौतिक तत्त्व है कि अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाओ, अधिक उत्पादन करो अधिक भोगो इसका एक ही परिणाम हुआ है जीवन में लाभ और संपन्न बढा है और अभाव आई है। पश्चिम के जीवन में अभाव दिखाई देती है, अक्सर मिलने प

भारतीय तत्त्वज्ञान को समझा के लिए वहाँ के लोग जो टूट पड़ते हैं उगवा मुख्य कारण यह विचारधारा ही है। वहाँ लोग अपनी जीवन पद्धति से पक्क गए हैं उस बदलना चाहते हैं, परन्तु एस बातचीत में पक्क गए हैं कि निबलना सम्भव ही नहीं हाता अधिकाधिक फसल ही जाते हैं। हम इस दृष्टि को बदल सके अपने जीवन में मर्यादाओं को पुन प्रनिष्ठित कर सकें, ता बहुत से गरीबों को 'गरीबों आप ही आप मिट सकती है। गांधीजी ने इसका मांग बिनाद रूप में दिगाया है।

धन का उचित वितरण नहीं

गरीबों के इस कष्ट और असंतोष का कारण और भी हैं। भ्रष्टाचार तो है ही, दूसरा और बड़ा कारण यह है कि स्वाधीन भारत की सरकार न यद्यपि लोकतांत्रिक समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाया है वह धन के उचित वितरण का उपाय अभी तक नहीं कर सकी। अब तक उमक उद्योगों और विविध योजनाओं का लाभ कुछ रास प्रकार का तोषा का ही मिला रहा है। दूसरी ओर मित्र श्रम व्यवस्था का असंगत नारा लगाकर विचारों में और काय में भी एक गम्भीर उत्तमन पदा कर दी गई है। फलतः एक ओर कुछ विशेष प्रकार के लोगों के पास धन सिमट रहा है, बड़े बड़े महल बन रहे हैं भाग विलास और बमब मर्यादा ताड कर आग भाग रहा है दूसरी ओर न लोगों के पास भाजन है न वस्त्र हैं न रहने के लिए मकान हैं—दूसरी सुविधाओं की तो बात ही क्या !

सार रूप में कहा जाए तो सरकार का समाजवाद का लक्ष्य अब तक तो धनिका को अधिक धनिक और गरीबों का अधिक गरीब बनाने में ही सफल हुआ है। गरीबों को जहाँ-कहीं थोड़ी सी उपाजन की सुविधा मिली है वहाँ महगाई उनकी कमाई को खा जाती है। जो लोग ज्वार बाजरा पसा भोटा अनाज खाकर जीवन बसर करते हैं वे गेहूँ चावल खान लगे हैं तो कहा जाता है कि उनका भोजन का स्तर ऊँचा उठ गया है ! जो चलते पुँजे हैं वे कमजोरों से जल्दतरमदाम, छीन भ्रष्ट कर या टगकर अपना काम चला लेते हैं। जो ऐसे नहीं है वे हर तरह का कष्ट भोगते हैं। कानून की कित्तारों में उनको सरक्षण प्रदान करने के लिए कोई निश्चिद्ध कानून नहीं है, हालाँकि कानून की कित्तारों बहुत माटी है और दिन पतिदिन अधिक मोटी होती जाती है। वास्तव में कानून तो बहुत बनते हैं, परन्तु उनका अमल कराने और उनका प्रति जनता के मन में आदर—या आतंक ही

सही—पदा करने के प्रयत्न में उत्साह दिखाई नहीं पड़ता। कोई ऐसा कानून अब तक देखा नहीं गया जिसमें शक्ति को तोड़ मरोड़कर छिद्र न निकाल लिए गए हों।

चुनाव और दलीय पद्धति

तीसरी बड़ी समस्या है चुनाव, निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा शासन और दलीय पद्धति से पदा हुई बुराईया की। इनका मुख्य कारण यह है कि हमने जान बूझ कर ससदीय और मधीय व्यवस्था का वरण किया। साकतत्रक नाम पर आज यही व्यवस्था सत्ता में चल रही है। भारत जिस देश में जहाँ मतदाताओं को प्रलोभन दिए जा सकते हैं, भड़काया जा सकता है जाति पानि और घम की भावनाओं का लाभ उठाया जा सकता है ये सत्ताएँ साक प्रतिनिधिक कैसे होती हैं यह समझना कठिन है। इसके बाद दलीय पद्धति के कारण सदस्य अपने स्वतंत्र विचार भी पेश नहीं कर सकते। दल के कुछ लोग जो निश्चय कर लेते हैं, वही सबको मानना पड़ता है। उनका प्रभाव भी काम करता है। इन परिस्थितियों में ससदीय प्रणाली कुछ ही लागा की बुद्धि में चलने के कारण एक प्रकार की मर्यादित तात्कालिकी का रूप ले ली है। अज्ञानियों का प्रचार तो दुनिया में कम होता ही है, ससदीय प्रणाली की बुराईया जब मतदाताओं तक पहुँचता है—और यह भूलना नहीं चाहिए कि भारत में मतदाताओं की संख्या २०-२५ करोड़ है—तब उनका मनोबल क्षीण होना है उनका चारित्र्य बल कमजोर पड़ जाता है। इस रूप में ये चुनाव जिनमें विराधी उम्मीदवार एक-दूसरे की सात पुस्तक तक की छबर ल लेते हैं दल के चारित्र्य का गिरा देने के सबसे बड़े और अबूक साधन हैं। सत्ता के अग्र दलों में जो ससदीय प्रणाली चल रही है वह शासन की सुविधा की घन्टी है साकतत्रक से उसका क्या वास्ता? केवल तीन या पांच वर्ष में एक बार मतदान करके बैठ जान से दल के शासन में उनका सच्चा योग क्या हो सकता है?

ससदीय शासन प्रणाली

माधीजी ने ससदीय प्रणाली की कड़ी आलोचना की है। उन्होंने लोकतंत्र का जिन प्रणाली का सुभाव किया था वह उनका अंतिम वसुधैवकुटुम्बक में, अर्थात् उनका

बनाए हुए लोक सेवा सभ के विधान में दिया गया है (देखिए अध्याय १०)। उसके अनुसार, वे चाहते थे कि लोकतंत्र का विनाश और प्रसार ससद से सारे देश में करने के बदले ग्राम-सहायता को उनकी इकाई बनाकर किया जाए। यदि उनकी यह योजना उस समय देश के नेताओं ने स्वीकार कर ली होती तो आज देश में जो दुःस्थिति देखने को मिलती है वह दायर न मिलती। सच्चे लोकतांत्रिक समाजवाद का माग भी उससे प्रगस्त हो जाता। लोकतंत्र और तानाशाही दोनों की बुराईयाँ को उसने निबाल दिया गया था और दोनों की अच्छाईयों का समन्वय कर दिया गया था।

ससदीय शासन प्रणाली में जो लोग चुनावों में सफल हो जाते हैं वे अगले चुनावों को नजर में रखकर ही काम करते हैं। अर्थात् या तो वे योग्य नता नहीं होते—इसलिए प्रतिनिधि बनाए जान योग्य नहीं होते—जिससे अपने क्षेत्र की जनता को अपने पीछे और सही रास्ते पर चला सकें, या सही-गलत का ब्याल किए बिना ऐसे काम करते हैं जिससे जनता उतावले हो जाए और उनका मत सुरक्षित रहें। ऐसे कमजोर प्रतिनिधियों में लोकतंत्र का मादा हो ही नहीं सकता, उसकी भावना तो होती ही नहीं। विभिन्न प्रदेशों के भीमा सम्बन्धी भगड़े, भाषाई विवाद अमुक बाराखाने का स्थापित हो इस विषय के भगड़े आदि इसी मनोवृत्ति के घटक हैं। यदि वे अपने क्षेत्र की जनता के हित की दुहाई देकर किसी विषय पर भगड़ते हैं या कोई नया विवाद खड़ा कर देते हैं तो उसके समाचार जनता में गीघ्रता से फैल जाते हैं और उनकी लोकप्रियता बढ़ती है।

भाषावार प्रात-रचना

सम-व्यवस्था में भाषाई आधार पर घटक राज्या की सीमा निर्धारित करने में भी बहुत-से उपद्रव खड़े हुए हैं। हमसे राज्या की मनोवृत्ति सन्तुष्ट हो गई है और राष्ट्रीय भावना को ठेस पहुँची है। अलग-अलग राज्य अपने सन्तुष्ट अथवा माने हुए स्वार्थों को लेकर केन्द्र सरकार के सामने तरह-तरह की समस्याएँ खड़ी करते रहते हैं और उसकी सावदेगिय नीतियाँ में बाधक होते हैं। अन्य राज्या के साथ वे कठिन परिस्थितियों में भी सहयोग करना नहीं चाहते। केरल के साथ सबके समय जिन राज्या के पास अधिक खाल था वे उन्हे आसानी में देने को तयार नहीं हुए। नदियों के पानी के बटवारे के सम्बन्ध में भी भगड़े होते रहते हैं।

ब्रिटिश न विभिन्न वर्गों और समाज में फूट डालने के लिए उनमें जो पारस्परिक दुर्भावनाएँ पैदा कर दी थीं, जिनमें वर्तमान भाषाई समूहों की पारस्परिक दुर्भावनाओं ने उत्तर से दक्षिण की ओर एक भाषा बोलनेवाला से दूसरी भाषा बोलनेवाला को अलग कर दिया था और उनमें एक दूसरे के प्रति तिरस्कार पैदा कर दिया था वे दुर्भावनाएँ आज सगठित रूप में काम करने लगी हैं। वास्तव में भाषाई प्रदेशों के निर्माण की जा माँगों की गई उम्मीदें तो किया गया अपनी अपनी सस्कृति सम्बन्धी आकांक्षाओं का परन्तु असली कारण यह था कि वे दूसरी भाषाएँ बोलनेवालों के साथ रहना नहीं चाहते थे, उनसे अलग होना चाहते थे। अर्थात् एक प्रकार के प्रेम के बदले दूसरे प्रकार का द्वेष उन भागों की तह में था। जो चीजें द्वेष के आधार पर खड़ी हो वह शुभ नहीं हो सकती हैं ? परस्पर द्वेष और राष्ट्रीय प्रेम—ये दोनों बातें देश की आवश्यकताओं की दृष्टि से असंगत मालूम होती हैं। इनसे राष्ट्रीयता की कड़ियाँ कच्ची होती हैं। विभिन्न राज्यों के निर्माण और भाषाओं के आधार पर उनकी सीमा के निर्धारण से क्षेत्रीय और भाषाई समूहों के स्वार्थों की दृष्टि का विकास तो हुआ, समस्त देश के लाभ की दृष्टि कमजोर पड़ी।

फिर, भाषावार राज्यों के निर्माण से किसी भी राज्य ने अपनी भाषा का विकास इतना तो नहीं किया कि वह दावे के साथ अग्रणी को हटाकर अपनी भाषा को उसके स्थान पर प्रतिष्ठित कर देता परन्तु अपने राज्य में रहनेवाले अन्य भाषा भाषियों के प्रति भेदभाव में कमा नहीं की गईं। भाषावार राज्यों के निर्माण के संधर्भ में, राष्ट्रभाषा का उसका स्थान देने का सम्बन्ध में भी, समस्त भारत के सच्चे हितों का ध्यान नहीं रखा गया। राष्ट्रभाषा का प्रश्न तो केवल एक दो राज्यों के अग्रह के कारण खड़ा ही पड़ा है। भाषा के नाम पर जो भयानक झगड़े हुए वे हमारी आँखें खोलनेवाले होने चाहिए।

अंग्रेजी और अंग्रेजियन

इससे निकट सम्बन्ध रखनेवाली अंग्रेजी और अंग्रेजियन की समस्या है। राज्य का कामकाज तो बहुत कुछ अंग्रेजी में चल ही रहा है हमारे जीवन में भी अंग्रेजियन अधिकाधिक घुमती जाती है। दिल्ली जैसे शहरों में अंग्रेजियन का जो प्रभाव आज देखने का मिलता है, वह अंग्रेजों के उमान में नहीं था। इसको हमने रोका नहीं तो हमारी जीवन पद्धति और संस्कृति के सदगुण, जो हम अब तक

जीवित रख मने हैं पीछे पड जाएंगे और हम एक ऊपरी सम्यता के जाल में जकड़-
कर सनातन धार्मिक और गुड के भाग से पथक हा जाएंगे ।

दलीय राजनीति

विभिन्न दल और विचारधाराओं के मगड भी भारत को राष्ट्रीय नींव को खोलना करते रहन हैं । कोई दल सारे भारत को एक हिंदू राज्य बना देना चाहता है, कोई साम्यवादी का स्वप्न देखकर चीन या रुस से प्रेरणा लेना चाहता है, कोई समाजवादी या अमेरिकी भाग की मिफारिण करता है, परन्तु इन सबके बीच ऐसा कोई भी दल नहीं है जो गुड भारतीय भाग को अपना उद्य मानता हो । गांधीजी की दुहाई अपने स्वार्थों के लिए सभी देते हैं परन्तु उनकी शिक्षा का अनुसरण कही दिगलाई नहीं पडता । सब दल का काम केवल एक है—अपनी अपनी तुरही अलग अलग बजाकर गामक दल का विरोध करना । और उसे पदच्युत करने के उचित अनुचित प्रयत्न में लीन रहना । इन बाधाओं से शासक दल के कार्यों में बाधा पडती है और मारे देग का गामत डीना होना है ।

विरोधी दल का होना तो अच्छा है, परन्तु यदि विरोधी दल के पास कोई स्पष्ट कार्यक्रम न हो वह कार्यक्रम बनाने में भिन्नकता हो, तो उमका विरोध केवल अडगा-भीति का चोतक बन जाता है । उमका साथ तो कोई नहीं होता जनता बुद्धि भेज और भाति में पड जाती है ।

अनाज की कमी

बहुत बड़ी समस्या है देग का भोजन देने की । सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं में वनमान की अपेक्षा भविष्य का विचार अधिक रहा । इसलिए उनमें कृषि को उतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना उद्योगों को दिया गया । परिणाम यह हुआ कि हमे स्वाधीनता के इतने वर्षों के बाद भी विदेशों से अनाज मगाकर देगवासियों का उदर पोषण करना पडता है ।

कहा जाता है कि हमारी कृषि की उपज में वृद्धि तो बहुत हुई है परन्तु जनसंख्या में अमर्यादित वृद्धि होने के कारण जा अधिक पदा होता है वह उतनीम खप जाता है, और हमारा हालत फिर भी पहले जती ही बनी रहती है । इससे न केवल । की उपज बढ़ाने की, वरन जनसंख्या की वृद्धि को रोकने की समस्या भी

मुह बाएँ खड़ी है।

परन्तु वे द्र सरकार द्वारा सार भारत में अनाज के समुचित वितरण की एक सफल योजना की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। अलग-अलग राज्यों की अपनी अपनी खाद्य-नीति के कारण समुचित वितरण में बाधा पड़ती है। उसका निवारण होना ही चाहिए।

अनाज की समस्या के कुछ महत्वपूर्ण पहलू और भी हैं। एक तो यह है कि देश में उस सारबप सुरक्षित रखने के लिए अच्छे गोशालों की कमी है। इस कारण बहुतेरा अनाज सड़ जाता या चूहा के पेट में चला जाता है। उसकी रक्षा होना जरूरी है।

कहा जाता है कि देश में इतने चूहे हैं कि वे प्रति वर्ष सारे अनाज का एक तिहाई टिंसा खा जाते हैं। यह भी अनुमान लगाया गया है कि छ चूहे मिलकर एक मनुष्य का जन्म खाते हैं। यदि यह अनुमान सही है तो भयानक है। इसका कुछ प्रबंध किया जाना चाहिए। वैज्ञानिकों और जीव विद्या के सन्तुलन शास्त्र—ईकातोजी—के विशेषज्ञों का इस ओर ध्यान देना होगा।

भाजन की जादता और पद्धतियों से भी इसका कम सम्बन्ध नहीं है। भारत में केवल चावल खानेवाले या केवल गहू खानेवाले क्षेत्र न रहें तो समुचित वितरण में सरलता हो जाएगी। दूसरे, हम पका हुआ भोजन बरबाद करने की आदतें छोड़नी होंगी। दावता में भोजन की बरबादी हानी है लोग अपनी शालियों में जो भोजन छोड़कर बरबाद कर देते हैं, वह न हो तो बहुत अनाज की बचत होगी।

अच्छा आहार प्रदान करनेवाले पत्तों (जैसे ब्रेड फ्रूट, कटहल आदि) और कन् मूल (जैसे टामिओका आलू आदि) की उपज बढ़ाई जाए, उनमें तरह तरह के व्यंजन बनाने की विधियाँ का विकास किया जाए और उनका संगठित तथा व्यापक रूप से प्रचार किया जाए, तो भी इस समस्या को हल करने में मदद मिल सकती है। बहुत-से व्यंजन डिब्बा-बन्द करके सस्ते दामों में बेचने की भी आवश्यकता है इस दिशा में हमारे देश में अब तक व्यवस्थित विचार और संगठित प्रयत्न किया ही नहीं गया, जो होना जरूरी है।

सुरक्षा की समस्या

भोजन से भी बड़ी समस्या बन गई है देश की सुरक्षा की। पाकिस्तान और

चीन व आक्रमण का खतरा भारत की सीमाओं पर लगभग स्थायी हो गया है पाकिस्तान के १९६५ के आक्रमण का अनुभव बताता है कि भारत अपनी रण के लिए किसी दूसरे देश पर निर्भर नहीं कर सकता फिर भी पाकिस्तान व अनेक प्रकट या प्रच्छन्न कारणों से छोटे बड़े देशों से सैन्य सहायता और सैन्य अस्त्र सस्त्रों की महायता मिलनी रहेगी। चीन को किसी दूसरे देश से महायत लेने की उल्लेख है ही नहीं।

हमारी यह कठिनाई हमारी बदगिर्ज नीति की पराजय की छाप है। हमारे नीति उत्तम है, इसमें कोई सन्देह नहीं। वह स्वतंत्र भी है जो होनी चाहिए परन्तु वह अंग राष्ट्रों की नीति के अनुकूल नहीं पड़ती। यदि हम हंगरी में रुसक नीति की, विपत्तनाम में अमेरिका की नीति की और स्वयं में ब्रिटेन की नीति के आलोचना करते उन देशों व समूहों के आगे आते हैं तो अपने सबके के समस्त उनसे सहायता की आशा कम कर सकते हैं ?

आत्मनिर्भरता का अभाव

हमारा आदर्शवाद मानता है कि जिन देशों ने दूसरे देशों का शोषण करके अपने आपको सम्पन्न किया है उनका कतव्य है कि वे उन देशों को उनसे नव निर्माण के प्रयत्नों में अधिक से अधिक सहायता दें। इस आदर्शवाद के कारण हम उन राष्ट्रों के प्रति पर्याप्त कृतज्ञता भी प्रकट नहीं कर सकते जो हमारे औद्योगिक विज्ञान में हमारी आर्थिक सहायता करते हैं। हम उनके कोई राजनीतिक अथवा अन्य बंधन भी स्वीकार नहीं करते। परन्तु हमारा आदर्शवाद सबको तो स्वीकार नहीं हो सकता। जो मदद करता है वह बड़े या न बड़े मन में कुछ प्रतिफल की आशा तो रखता ही है। फिर आज आर्थिक साम्राज्यवाद के प्रसार की नीति भी स्पष्ट दिखाई दे रही है। इसलिए हमारी बदगिर्ज नीति की पराजय आश्चर्यजनक नहीं है। यदि हम इतनी स्वतंत्र नीति पर चलना चाहते थे तो हम दूसरों से सहायता की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए थी और अपने आर्थिक तथा औद्योगिक मामलों को अपने ही बूते पर चलाना था। यदि हम दूसरों से कोई अपेक्षा न करते तो विश्व में हमारे आदर्शों का आदर होता और प्रभाव पड़ता।

सुरक्षा के लिए हमें केवल अस्त्र सस्त्रों की दृष्टि से नहीं, राष्ट्रीय जीवन के

सब जग की दृष्टि से आत्मनिर्भर और सबल बनने की आवश्यकता है।

एकता का अभाव

एकता का अभाव न लोक जीवन की विकासशील शक्तियों को पगुप्राय बना दिया है। इस अभाव को दूर किए बिना कोई भी प्रगति सम्भव न होगी। इस समस्या माला में विगोया हुआ तार मानना चाहिए।

सन १८५७ से लेकर १९४७ तक अर्थात् ९० वर्ष, भारत न विदेशी सत्ता का हटान का जा निरन्तर संघर्ष किया और अन्ततः गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग तथा कानून भंग का जो उत्साह जन जन में फैला, उसके कारण सारी जनता का मन में सत्ता का विरोध करने और उसे अपने-आप से अलग समझने की वृत्ति घर कर गई। यदि देश में एकात्मक भावित हुई होती तो शायद यह मनोवृत्ति भी उसके साथ कोई दूसरा रूप लेती। परन्तु हमारा स्वराज्य उत्पत्ति की प्रक्रिया में आया। उसके आगमन का असर भी लागा के मन पर बहुत धीरे धीरे ही हुआ। फलतः विरोध का मनोवृत्ति का न तो परित्याग हो सका न परिमाजन। शानत के प्रति ता वह चेतन या अचेतन मानस में बनी ही रही, सामान्य जीवन में भी उसने अपना हाँटक रखकर दूसरों से संघर्ष करते रहने की प्रेरणा दी, क्योंकि वह तो तब स्वाभाव का जग बन चुकी थी। परिणाम हुआ खींचतानी। स्वायत्त के साथ मिलकर उस खींचतानी न और भा अधिक राष्ट्र कल्याण विधातन रूप धारण कर लिया। वह आज सबथ दृष्टिगत हो रहा है। स्वराज्य की यह समस्या जितनी स्वाभाविक है उतनी ही विषम भी है। नेता-जन से हटकर करने के कुछ प्रयत्न किए हैं फिर भी यह अब तक चिन्तनीय बनी है।

तेरह

समस्याओं की कुजी राष्ट्रव्यापी एकता

स्वराज्य की समस्याओं को विचार के लिए इन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है

- १ कुरादया और कमिया के निवारण का समस्याए
- २ नवनिर्माण की समस्याए और
- ३ आत्म निर्भर हान की समस्याए ।

इन सब समस्याओं से निपटने के उपायों में एक बात सामान्य मालम होती है राष्ट्रव्यापी रूप में मिल जुलकर दडसकल्प होकर उत्साह सम्भावना और सदबुद्धि के साथ निरंतर प्रयत्न करना । अर्थात् निवारक निर्माणकारी नेवाभय राष्ट्रीय एकता अथवा डायनामिक राष्ट्रीय एकता । इस मूलभूत प्रश्न मान लेना अनुचित न होगा ।

हिंदू मुस्लिम एकता

स्वाधीनता के पूर्व गांधीजी ने और उनके पहले अन्य नेताओं ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एकता स्थापित करने के निरंतर प्रयत्न किए थे । परन्तु अंततः वे सफल नहीं हुए और जिस दुःस्थिति का रोकने के लक्ष्य से ये प्रयत्न किए गए थे वह आकर रही । अर्थात् देश की अगडता नष्ट हो गई । देश के विभाजन के समय और उसके पहले बाद दोनों सम्प्रदायों में जा भीषण रक्तपात हुआ और आगे चलकर पाकिस्तानी नेताओं ने भारत के विरुद्ध निरंतर विद्रोह उगलते रहने की जिस नीति का अवलम्बन किया, उस सबसे कुछ समय तक ऐसा प्रतीत होता रहा कि किसी दिन दोनों देशों में जावानों की बदला बदली करने का मौका आए बिना न रहेगा । परन्तु भारत के अंदर धीरे धीरे स्थिति सुधरती गई । संविधान के लागू हान पर भारत की हिंदू और मुसलमान जनता

में साधारण प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। अब एसी परिस्थिति आ गई है जबकि भारत के मुसलमान अपने देश की रक्षा में दूसरे किन्हीं भी भारतीयों से पीछे नहीं दिखलाई पड़ते। अतः इस साम्प्रदायिक समस्या का हल हो गया। ऐसा मान लेने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। अब एक ही खतरा रह गया है। पाकिस्तान में हिन्दुओं की प्रति जो अत्याचार होत रहत है जिनके कारण वहाँ की हिन्दुओं और अन्य गर मुस्लिम जनता भाग भाग कर भारी संख्या में भाग्य जाती रहती है, उनसे भारत के लोगों में भी कभी-कभी उत्तेजना फलती है और छुटपुट वारदातें हो जाती हैं। सभी लोग इन घटनाओं का मूल कारण जानते हैं इसलिए इनकी वृत्ति न देने में और इनसे दोनों सम्प्रदायों के सम्बन्धों का बिगड़ने न देने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं। यदि किसी तरह पाकिस्तान से आनेवाली इस उत्तेजना को रोक जा सके तो यह खतरा भी मिट जाएगा। परन्तु निकट भविष्य में इसकी संभावना दिखलाई नहीं पड़ती। इसलिए हम अपने देशवासियों में परस्पर अच्छी भावनाएँ बनाए रखने के प्रयत्न ही करने होंगे। ये प्रयत्न स्थायी बदलाव भी सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि उत्तेजना होने पर भी सद्भावना बनाए रखने के प्रयत्नों से हमारे चरित्र पर अच्छा असर पड़ेगा। हिन्दु मुस्लिम समस्या के अलावा दूसरी साम्प्रदायिक समस्याएँ कभी देश में उग्र हुई ही नहीं।

सूक्ष्म भूमिका की एकता

फिर भी, दूसरे रूप में एकता की समस्या उग्र है ही। भारत में प्राचीन काल से सूक्ष्म भूमिका की जो एकता चली आ रही है उसमें सेवा की आत्तुरता और ओज, पराक्रमशीलता या टायनामिज्म नहीं है। उस निवृत्तिपरक कहना चाहिए, प्रवृत्तिपरक नहीं। उससे अखिल भारतीय सांस्कृतिक स्तर पर आदान प्रदान तो हो सकता है, शांति भी रह सकती है, परन्तु वह हमारे सामान्य लोक-जीवन, साम्यागत जीवन और सामाजिक जीवन में फलवनी नहीं होती। आर्थिक जीवन में भी उसका प्रभाव देखने को नहीं मिलता। शोषण स्वार्थों और भावात्मिकी आग्रहों का प्रश्न खड़ा होने पर तो वह बिल्कुल ही असफल हो जाती है। प्रासंगिक द्वेष तथा उत्तेजना की भी संभावनाएँ सम हैं।

प्रामाणिक एवना

कभी कभी लोग कहते हैं कि इसमें एकता तो है ही दखो न चीन और पाकिस्तान के आक्रमण के समय हम किस एक मनुष्य जैसे खड़े हो गए थे। बार बार एकता की बात कहकर हमारा मनोबल क्षीण क्या करत है ? बात तो सही है, परन्तु दृष्टि में भेद है। यह तो वसी ही एकता है जसी कौरवा और पाडवो में था

परम्पर विवादेषु वयं पच गत च तः।

अथ सह विवादेषु वयं पचात्तर पातम ॥

अर्थात् यदि हमारे बीच आपसी भगदों हो तो हम (पाडव) पाच हैं और वे (कौरव) सौ हैं परन्तु दूसरों के साथ भगडा हो तो उनसे निपटने के लिए हम एक सौ पाच हैं।

इस एकता में तो पाडवा और कौरवा की रक्षा नहीं हा सरी। इसका लाभ उठाने के लिए सदैव किसी बाहरी शक्ति के साथ युद्ध में लग रहना होगा।

दोनो में अंतर

पहली एकता सरोवर के जल जसी है जो आघात होने से नमती तो है पर टूटती नहीं। जिस प्रकार सरोवर का जल अपने स्थान पर स्थिर होता है और बहकर खेतों को हराभरा नहीं कर सकता, परन्तु कोई उसके पास जाए तो प्यास बुझा देता है उसी प्रकार यह एकता सब भारतीयों को एक राष्ट्रीयता में तो आबद्ध रखती है, परन्तु आगे बढ़कर कम या सेवा करने की पराक्रम दिखाने की स्फूर्ति प्रदान नहीं करती। कोई इसे तोड़ने का प्रयत्न करे इसको आघात पहुँचाए तो इसमें क्षणिक वक्रता तो आती है परन्तु यह टूटती नहीं। यह अपनी शक्ति को भूला रहती है। इसका कृत्स्न देखने के लिए हनुमान की तरह इसे इसकी शक्ति का स्मरण कराना होता है।

दूसरे प्रकार की एकता अपने में सातत्य न होने के कारण पर्याप्त लाभदायी नहीं होती। वह समुद्र के ज्वार के समान है। पूर्णिमा का दिन आने पर जिस तरह समुद्र पूरे वेग से तट पर आक्रमण करता है, परन्तु पूर्णिमा के बीत जाने पर आटा आ जाता है और समुद्र की लहरें फिर से पीछे हटकर साधारण तरंगों का

रूप धारण कर लेती हैं, उसी प्रकार यह एकता भी युद्ध का अवसर आने पर जोर पकड़ती है और उसके समाप्त हो जान पर ठंडी पड़कर समस्त दायित्वा के प्रति अचेत हो जाती है।

दोनों का मिश्रण आवश्यक

भारत को अपनी समस्याएँ हल करने के लिए इन दोनों प्रकारों की एकता व मिश्रण की आवश्यकता है, जिसमें पराश्रमशीलता भी हो और मातृत्व भी। इसमें अतिरिक्त उसमें उत्कृष्ट संवेदनशीलता भी चाहिए, जिससे वह पराश्रम के प्रत्येक अवसर को अपने आप खोजकर पकड़ ले और हाथ से न जाने दे।

ऐसी एकता स्थापित हो जाए तो हमारी सब समस्याएँ सरलता से हल हो सकती हैं। भ्रष्टाचार, स्वाध-संप्रप, देश का अहित करनेवाली व्यक्तिगत महत्वा काक्षा अदक्षता और अन्य प्रकारों की चारित्र्यहीनता के ठिकाना को पकड़कर यह सातत्यमय, पराश्रमशील और संवेदनशील एकता ऐसे संपाटित आन्दोलन का जन्म दे सकती है, जो इन समाज विरोधी और देश द्रोही दुःगुणों को क्षण भर में मिटा दे। ससदीय शासन की बुराईयाँ को भी यह अपनी हुंकार से ही शान्त कर सकती है। विभिन्न दलों को इसकी शक्ति देखते ही इसके सामने गिर झुककर अपनी राह सुधार लेनी होगी।

गरीबी और अनाज की समस्याएँ इसकी पराश्रमशीलता का बग न सह सकेंगी। कृषि, उद्योग और विभिन्न निर्माण-कार्य इसके सामने सरल हो जाएंगे। जिस दिन मारे देश में इस एकता की प्राण प्रतिष्ठा हो जाएगी उस दिन में चार गप्ताह भी सारी समस्याओं को हल करने में लगेंगे। उसके बाद उन्नति का प्रथम गुरु होगा, और जारी रहेगा। घन धातु के प्रचलन साधना से परिपूर्ण हमारा यह देश न केवल आमनिभर हो जाएगा, बल्कि दूसरों की सेवा भी कर सकेगा।

देश की सुरक्षा का अवसर की एकता में भी सम्भव हो चुकी है। जिस दिन यह प्राण प्रतिष्ठित एकता हमारे राष्ट्रीय जीवन का धार्य करेगी उस दिन से दूसरे राष्ट्र हमारी ओर आँख उठाने का या लज्जाचकित हुई आँखा से दखने का साहम भी नहीं करेंगे।

एकता की प्रशिक्षण

जलियर राष्ट्रीय एकता से यह सब चमत्कार बग हो जाएगा यह प्रश्न स्वाभाविक रूप में उठता है। कभी-कभी इसमें सताप भी दिखाई देता वह ना स्वानाविन है। हम इस इसकी प्रशिक्षण का दृष्टि से समझन का प्रयत्न करेंगे।

एकता का अभाव के जा थोड़े से विषय उदाहरण के रूप में विद्युत् अघ्याय में बताया जा चुके हैं—भाषा क्षेत्र दल विचारधारा संस्था संगठन संकुचित स्वायत्त आदि—उनसे देश की गति-स्थिति और उन्नति में बाधा पड़ती है। जनता का सहयोग के बिना सरकार अपनी नीतियाँ का निवाह कर ही नहीं सकती। सरकार जनता को चुनी हुई होती है। यह जनता की हाथी है। यह सब जनता के हित के लिए नीति निर्धारित करके और विधि नियम बनाकर सामन करती है। उसके विधि नियमों या जागों में विचारधारा की गलती तो हो सकती है परन्तु उद्देश्य या इरादा अच्छे हा हो सकते हैं। यदि वह कहीं गलती करती है तो उसे संगठित लोकशक्ति और लोकमत के बल पर ही सुधरवाया जा सकता है। इस प्रकार राष्ट्र की एकता उमपर अकुण रूप सकती है। एकता के बिना यह अकुण समय नहीं है।

यदि सरकार को अच्छी नीतियाँ का पालन भी सुचारु रूप से न हो तो, या तो उनका कार्यपालक कमचारियाँ का दोष होगा, या जनता का या दोनों का। जनता इस स्थिति को एकतामय प्रयत्न द्वारा ठीक कर सकती है। यहाँ एकता का साथ जरूरत होती है सवन्तगलता और जागरूकता की जिससे वह परिस्थिति का ग्रहण कर ल, सेवा और पराक्रम की जिससे वह कारवाई कर सके सातत्य की जिससे वह तब तक कारवाई करती रहे जब तक कि कार्य सिद्ध न हो जाए। परन्तु ऐसी कारवाई में कुछ तत्त्व मूलभूत हैं जिनके बिना लाभ के स्थान पर हानि हो जाने की आशा रहनी। वे हैं—समझौता या भले बुरे का ठीक जान, माय और शांतिपूर्ण प्रयत्न। गांधीजी तो कहते थे कि लोकतंत्र में हिंसा का कोई स्थान ही नहीं सकता। साम्यवादी विचारों के लाग इस बात को नहीं मानते परन्तु उनकी विचारधारा अलग ही होती है।

१ उदाहरण

इसको समझने के लिए एक उदाहरण ले लें। यदि सरकार ने भ्रष्टाचार और गोरबाजारी जस समाज विरोधी कार्यों को रोकने के लिए कानून बनाया, परन्तु कुछ लोग कानून में छिद्र खोजकर या उसे धना बताकर इन समाज विरोधी कार्यों का नाना रूप में चलाते ही रहे तो हानि सब जनता की होगी। यदि जनता एक होकर इस समाज विरोधी कार्यों को सहन करने से इनकार कर दे और 'याया-याय' का पूरा विचार करके ऐसे काम करनेवाला के साथ अछूता जसा व्यवहार करना शुरू कर दे तो यह बुराई तुरन्त मिट जाएगी। उल्टे यदि कुछ लोग विरोध करें, कुछ समयन करें और कुछ हाथ पर हाथ रखे बठे रहें तो सघप ता हागा, परन्तु लाभ पूरा न हा सकेगा। राष्ट्रीय पमाने की बुराइया को मिटाने के लिए राष्ट्रीय पमाने की एकता भी आवश्यक है।

दूसरा उदाहरण व्यवस्था, स्वच्छता और सु-दरता की दृष्टि से नियम बनाए गए कि शहर में २० मील प्रति घंटा से तेज कोई मोटर न चलाई जाए, बूडा करवट घूर में ही फेंका जाए और सावजनिक पाक से फूल पोथे आदि तोड़े जाए। कुछ लोग लालच या बुरी आदतों के कारण इन सब नियमों का तोड़ते रहें। फल हुआ दुघटनाएँ सबन गंदगी और बीमारियाँ का प्रसार और सावजनिक पाक का नाश। दूसरे लोग यह सब देखते हुए भी चुपचाप बठे रहे—क्या तो डरते थे या लापरवाह थे, यद्यपि हानि उनकी भी हुई। ऐसी हालत में सरकार क्या कर सकती? जा काम जनता के सुख के लिए और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए किए जाते हैं उनका समयन और सरक्षण यदि जनता न करे तो वे हा ही नहीं बनते। सरकार हर चीज की रक्षा और हर छोटे बड़े नियम के सरक्षण के लिए हर जगह पुलिस तो रख नहीं सकती—यह न सम्भव होगा, न यावहारिक, न हिन कर और न जनता के मान सम्मान के अनुकूल। यह काम तो जनता का है। और यदि जनता एक होकर न कर तो नहीं हा सकता। जनता का सगठित बल न मिलने पर एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की हिम्मत समाज विरोधी लोगों के विरुद्ध खड़े हाने की नहीं हो सकती। मान लीजिए नियम के विरुद्ध तब मोटर चलानेवाले ने कोई दुघटना हा गइ। कुछ लोग जान-बूझकर उसकी हिमायत करने लगे, कुछ पुलिस को सौपने पर तुल पडें। बस सघप बढ जाएगा, उस व्यक्ति को या दूसरो

को कोई शिक्षा न मिलेगी। उलटे, जिसने भी तेज मोटर चलाते देगा उसने हा मारा किया, टोका, तो यह वृत्ति बढ़ न पाएगी। यह वृत्ति विकसित करने के लिए एकता ही आवश्यक है। एकता जीवन का एक मानकण्ड निश्चिन कर सकती है जिसका उल्लेखन सभय न होगा।

इसी प्रकार और भी बुराईया रोजी जा सकती हैं उनका निवारण किया जा सकता है।

नव निर्माण के लिए एकता

अब लीजिए नव निर्माण का विषय। हम कारगमाने बनान हैं, सेती की उन्नति करनी है, सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना करनी है अपनी मसृति और भाषा की पुन प्रतिष्ठा करनी है। ये सब काम यदि एक एक ध्यवित्त या एक एक समूह की अलग अलग इच्छा के अनुसार हो तो गायन हो ही नहा सकेंगे। यदि हुए ताउनम न तो व्यवस्था आएगी न समन्वय ही स्थापित होगा। सरकार भाग दान के लिए एक नीति निर्धारित कर देती है कुछ काम भी करती है। य सब काम राष्ट्रीय हित को ध्यान म रगकर किए जाते हैं। क्षेत्रीय हितों का ध्यान तो रखा जाता है परन्तु उन्हें राष्ट्रीय हितों के विपरीत जाने देने की वृत्ति नहीं रखी जाती। अब यदि लोग आपस म मिलकर दिल स उह पूरा न करें, कुछ लाग हीलाहवाला करें कुछ लोग गाररत करें कुछ लोग एक ओर खीचें कुछ लोग दूसरी ओर खीचें कुछ लोग भगडे लगाने और विरोध करने मे ही लगे रह, तो कोई काम ठीक तरह से पूरा न होगा। परन्तु यदि सब लोग केवल राष्ट्रीय हितों को ही ध्यान म रगकर एक ही दिशा म चलें तो सब काम बहुत सरलता से, अच्छा और गीत्र हो जाएगा।

सेती का उदाहरण ल ल। यदि अनाज पदा करना मूगफला या पन्नन पदा करने स देश के लिए ज्यादा जरूरी है, तो हम सबकी भावना यही हानी चाहिए कि आप की हानि सहकर भी हम अनाज ही पदा करेंगे। यदि हानि महना सम्भव नहा है तो हम मिलकर समाज और सरकार से ऐसी सहायता ले लेंगे जिससे हमारी हानि पूरी हो जाए। परन्तु यदि हम छोटे छोटे समूहों म या यवित्तगत रूप से यही काम करना चाहेंगे और राष्ट्र का हित उसम न हागा तो हम अपने आपो जन म सफल न हो सकेंगे सरकार और समाज से हमे सहायता न मिलगी। व्यापक एकता से जो वातावरण बन जाता है उसम भी बहुत गक्ति होती है। यदि

सारा राष्ट्र यह स्वीकार कर ले कि हम मले की खाद का मुक्त मन से यथेष्ट उप-योग करेंगे तो देश के किसी भाग में उसके विरुद्ध भावना या दुराग्रह नहीं रहेगा। एक होकर सम्मिलित शक्ति लगान से ही राष्ट्र निर्माण का कार्य ठीक हो सकते हैं।

आत्म निर्भरता के लिए एकता

अब तीसरा विषय आत्म निर्भर होने का है। इसका जय है, जितनी वस्तुएँ हम अपना पूरा शक्ति लगाकर पैदा कर सकें या बना सकें उतनी पैदा कर और बनाएँ। आत्म निर्भरता की यह प्रक्रिया छोट-छोटे गाँवों से शुरू होनी चाहिए।

परन्तु हमारी सरकार ने एक राष्ट्रीय नीति निश्चिन कर दी है। वह है नाक-त-नात्मक समाजवाद की। उसके साथ मिश्र अर्थ व्यवस्था की बात भी कही जाती है। इस नीति के रहते हुए हम इसकी मर्यादाओं के अन्दर रहकर ही काम करना होगा। यही राष्ट्र के लिए हितकारी होगा। यदि हम इस नीति मानते तो हम बाधा-निवारक से श्रेष्ठ बदलकर दूसरी नीति का अवलम्बन करना चाहिए। इन दोनों बातों के लिए राष्ट्रीय एकता आवश्यक है। बिना एकता के, एक भावना के, यह काम नहीं सकेगा।

वर्तमान राष्ट्रीय नीति है बड़े बड़े कारखानों के साथ-साथ छोटे उद्योगों, सरकारी उद्योगों और खानगी उद्योगों—सबका प्रात्याह्न लेकर देश में आवश्यक माल उत्पन्न करने की, और इस तरह शीघ्र से शीघ्र आत्म निर्भर बन जाने की। श्रमिक सम्बन्धों में भी सरकार ने नये प्रकार की छेता नये तरीकों से करार कर उपज-वर्धन का नाति निर्धारित की है। हमारा राष्ट्रीय भावना का पूरा बल इस दिशा में और सबके दृष्ट मकल्प से यह कार्य सिद्ध हो इसमें सबका कल्याण है। इसमें जो मन्त्र करता है वह देश का भित्त और जो बाधा डालता है वह शत्रु, ऐसी राष्ट्रीय भावना से इसका सिद्धि में मदद मिलगी। यह भावना राष्ट्रव्यापी हो, राष्ट्र इसके विपरीत कुछ भी सुनने का तयार न हो, यह राष्ट्रीय एकता से ही संभव होगा।

नेता कौन हैं ?

इस सबके बाद एक बड़ा प्रश्न रह जाता है इस एकता का नेता कौन है ? वामन्तव में तो नेताओं का उदय गांधीजी का सुभाषी हुद्द ग्राम-पंचायतों के माध्यम

तो कोई गिशा न मिलेगी। उलटे, जिसने भी तेज मोटर चलाते दगा उसने हा मना किया, टोका, तो यह बलि बढ़ न पाएगी। यह बलि विकसित करने के लिए एकता ही आवश्यक है। एकता जीवन का एक मानक निश्चिन्तन कर सकती है जिसका उल्लंघन संभव न होगा।

इसी प्रकार और भी बुराईयां रोकी जा सकती हैं उनका निवारण किया जा सकता है।

नव निर्माण के लिए एकता

अब लीजिए नव निर्माण का विषय। हम कारगर बने हैं, सती की उन्नति करनी है, सच्चे लोकतंत्र की स्थापना करनी है अपनी मस्तिष्क और भाषा की पुनः प्रतिष्ठा करनी है। ये सब काम यदि एक-एक व्यक्ति या एक-एक समूह की अलग-अलग इच्छा के अनुसार हो तो गायब हो ही नहीं सकेंगे। यदि हुए तो उनमें न तो व्यवस्था आएगी न समन्वय ही स्थापित होगा। सरकार भाग दान के लिए एक नीति निर्धारित कर देती है कुछ काम भी करती है। ये सब काम राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर किए जाते हैं। क्षेत्रीय हितों का ध्यान तो रखा जाता है परन्तु उन्हें राष्ट्रीय हितों के विपरीत जाने देन की बलि नहीं रखी जाती। अब यदि लोग आपस में मिलकर दिल से उह पूरा न करें कुछ लाग हीलाहवाला करें कुछ लोग गाररत कर, कुछ लोग एक ओर खींचें कुछ लोग दूसरी ओर खींचें, कुछ लोग भगडे लगाने और विरोध करने में ही लगे रहें तो कोई काम ठीक तरह से पूरा न होगा। परन्तु यदि सब लाग केवल राष्ट्रीय हितों को ही ध्यान में रखकर एक ही दिशा में चलें तो सब काम बहुत सरलता से, अच्छा और गीघ्र हा जाएगा।

सेती का उपाहरण लें। यदि अनाज पदा करना मूकफला या पतान पदा करने से दश के लिए ज्यादा जरूरी है तो हम सबकी भावना यही हानी चाहिए कि आय की हानि सहकर भी हम अनाज ही पदा करेंगे। यदि हानि सहना सम्भव नहीं है तो हम मिलकर समाज और सरकार से ऐसी सहायता ले लेंगे जिससे हमारी हानि पूरी हो जाए। परन्तु यदि हम छोटे-छोटे समूहों में या व्यक्तिगत रूप से यही काम करना चाहें और राष्ट्र का हित उसमें न हागा, तो हम अपने-आपों में सफल न हो सकेंगे सरकार और समाज से हम सहायता न मिलेगी। व्यापक एकता से जो वातावरण बन जाता है उसमें भी बहुत शक्ति होती है। यदि

सारा राष्ट्र यह स्वीकार कर ले कि हम मूल की खाद का मुख्य मूल से यथेष्ट उपयोग करेंगे तो देश के किसी भाग में उसकी विरह भावना या दुराग्रह नहीं रहेगा। एक होकर सम्मिलित शक्ति लगान से ही राष्ट्र निर्माण का कार्य ठीक हो सकेगा है।

आत्म निर्भरता के लिए एकता

अब तीसरा विषय आत्म निर्भर होना है। इसका अर्थ है, जितनी वस्तुएँ हम अपनी पूरी शक्ति लगाकर पैदा कर सकें या बना सकें उतनी पैदा करें और बनाएँ। आत्म निर्भरता की यह प्रक्रिया छोटे छोटे गांवों से शुरू होनी चाहिए।

परन्तु हमारी सरकार ने एक राष्ट्रीय नीति निश्चित कर दी है। वह है लोकतन्त्रात्मक समाजवाद की। उसके साथ मिश्र अर्थ व्यवस्था का बात भी कही जाती है। इस नीति के रहते हुए हम इसकी मर्यादाओं का जल्द रहकर ही काम करना होगा। यही राष्ट्र के लिए हितकारक होगा। यदि हम इस नहीं मानते तो हमें वधानिक तरीके से इस बदलकर दूसरी नीति का अवलम्बन करना चाहिए। इन दोनों बातों के लिए राष्ट्रीय एकता आवश्यक है। बिना एकता के, एक भावना के यह काम न हो सकेगा।

वर्तमान राष्ट्रीय नीति है बड़े-बड़े कारखानों के साथ साथ छोटे उद्योगों, सरकारी उद्योगों और खानगी उद्योगों—सबको प्रोत्साहन देकर देश में आवश्यक माल उत्पन्न करने की ओर इस तरह धीमे से धीमे आत्म निर्भर बन जाने की। कृषि के सम्बन्ध में भी सरकार ने नये प्रकार की खेती नये तराकास करवाकर उपज बढ़ाने का नीति निर्धारित की है। हमारी राष्ट्रीय भावना का पूरा बल इन दिनों और सबके दृढ़ संकल्प में यह कार्य सिद्ध हो इसमें सबका श्लेषण है। इसमें जो मदद करता है वह देश का मित्र और जो बाधा डालता है वह शत्रु ऐसी राष्ट्रीय भावना से इसकी सिद्धि में मदद मिलेगी। यह भावना राष्ट्रव्यापी हो, राष्ट्र इसके विपरीत कुछ भी सुनने को तयार न हो, यह राष्ट्रीय एकता से ही सम्भव होगा।

नेता कौन हैं ?

इस सबके बाद एक बड़ा प्रश्न रह जाता है इस एकता का नेता कौन है ? वास्तव में तो नेताओं का उभार गांधीजी की सुभाई हुई थी। ग्राम-पंचायतों का माध्यम

सं होना चाहिए (दखिण, अध्याय १०)। उनका विकास नीचे से ऊपर की ओर होना चाहिए। परन्तु हमारा राष्ट्रीय सरकार ने उनकी ग्राम-पंचायतों की योजना, अपनी ओर देश की मर्यादाओं का अनुभव करके अपनी नीति में बठाने योग्य परिवर्तित रूप में स्वीकार की है। अतएव वर्तमान ग्राम पंचायतों में अखिल भारतीय नेता उत्पन्न करने की शक्ति शायद ही है। इस अवस्था में अपनी केन्द्रीय सरकार को दिल्ली का सरकार को जो क्षेत्रीय स्वार्थों से ऊँच उठकर अखिल भारतीय स्वार्थों का साधन करती है अपना नेता मानना अधिक अच्छा होगा। परन्तु स्थानीय कार्य में स्थानीय अथवा राज्य सरकार ही नेता हो सकती है। 'यक्तिगत' के नतृत्व से सरकार का नतृत्व इसलिए अच्छा होगा कि 'यक्तियों पर सन्तुष्टि' स्वार्थों का असर पड़त हमने देखा है। सरकार सब प्रतिनिधियों से विचार विमर्श करने के बाद अपना नीति, आदेश और कार्य-योजना बनाती है। इसलिए उसके विचारों में 'यक्तिगत' स्वार्थों का अवकाश कम रहता है।

फिर भी, सबसे अच्छा गांधीजी का बताया हुआ यह तरीका ही है कि गांव अपना ग्राम-पंचायत का नेता चुनें। बहुत सी ग्राम-पंचायतों के नेता मिलकर अपना बड़ा नेता चुनें। इसी प्रकार अखिल भारतीय स्तर तक नेताओं का चुनाव होता रहे। ये सब नेता कुछ प्रयोगों का पालन करनेवाले हों। सब सवा परामर्श और सब चरित्रवान हों। स्वायत्त्याग और राष्ट्रभक्ति उनके कार्यों का आधार हों। गांवों के नेता अपने क्षेत्र के प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क रखकर सबको परिस्थितियों आकाशा और आवश्यकताओं की जानकारी रखें, और समग्र रूप में उनकी जानकारी अपने से बड़े नेताओं को देते रहें। जिससे यह क्रम अखिल भारतीय नेताओं तक पहुँच जाए। अर्थात् अखिल भारतीय नेता ग्रामों की आवश्यकताओं परिस्थितियों और आकाशाओं से पूर्णतः परिचित रहें। यदि देश को ऐसे नेता मिल सकें और देश पूर्ण राष्ट्रीय एकता के साथ काम करे, तो रामराज्य का भारतभूमि पर फिर से उतार लाना फलित न होगा।

बहुमत का नियम

जहाँ अधिक लोग होते हैं वहाँ मतभेद होना ही है। यदि लोग अपने विभिन्न विचारों पर दृढ़ हों तो क्या किया जाए? उत्तर लोकमत के लिए दूर जान की आवश्यकता नहीं है। लोकमत में बहुमत के नियम को स्वीकार करने की व्यवस्था

है ही। हम वही व्यवस्था हृदय से स्वीकार कर लेनी चाहिए। एक बार जब बहुमत से कोई निणय हो जाए तो हर एक व्यक्ति साधारण परिस्थितियाँ मध्यम के समान उसका पालन करे। इसका यह अर्थ नहीं है कि व्यक्तिगत विचार-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य की बलि चढ़ा दी जाए। विचार व्यक्त करने के बाद यदि बहुमत द्वारा स्वीकार न किया जाए तो विचारक के लिए दो विकल्प सदा उपलब्ध रहते हैं—या तो वह बहुमत के निणय को स्वीकार करके उसके अनुसार कार्य करे या अपने विचारों के अनुसार कार्य करके उनका परिणाम भोगे। दूसरा माँग सत्याग्रह का है, जिसका अवलम्बन एक व्यक्ति के लिए ही उचित हो सकता है जो सच्चा देशभक्त है और अपने जीवन में सत्य तथा ऊँचे सिद्धान्तों का नग्नता और निष्ठा के साथ पालन करता हो। अथवा वह उसके उपहास का और दण्ड के अकल्याण का कारण बन जाएगा।

चौदह उपसंहार

एकता कैसे हो ?

स्वाय एकता का सबसे बड़ा शत्रु है। दूसरे शत्रु है—धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता सामाजिक उच्च नीच भाव और दुर्व्यवहार, अपनी सस्कृति के सम्बन्ध में अहंकार और उसका संरक्षण तथा प्रसार के लिए पारस्परिक स्पर्धा आर्थिक विषमता और धन का आदर परम्परागत ईर्ष्या-द्वेष राजनीतिक मत्ता का लोभ या पराधीन देश में नीबरिया। एक बहुत बड़ा शत्रु और भी है—लोक जीवन के प्रति उदासीनता, उपेक्षा भाव और आत्म मतोष ।

गांधीजी से पूर्व के प्रयत्न

गांधीजी के पूर्व अनेक महापुरुषों ने अपने काल और परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्र में पराक्रमशील एकता स्थापित करने के प्रयत्न किए परन्तु उन सबका एक मर्यादा में ही सफलता मिल सकी ।

हिंदू मुस्लिम एकता की समस्या अनेक शताब्दियों से विभिन्न रूपों में चली आ रही थी। इसे हल करने का सबसे पहला प्रयत्न बादशाह अकबर ने दीन इलाही के प्रतिपादन द्वारा किया था। परन्तु वह उस समय के कट्टर और राज्याभिमानी मुसलमानों के विरोध के कारण मरुपत और टिडुआ के स्वयंमर्माभिमान के कारण सामायन सफल नहीं हो सका ।

दूसरा प्रयत्न कबीर आदि सूफी सत्ता ने किया। उसका भी अंत वसा ही हुआ। परन्तु वह अपना प्रभाव सदा के लिए छोड़ गया है ।

तीसरा प्रयत्न १८५७ के स्वातंत्र्य युद्ध के सम्बन्ध में हुआ। वह बहुत हद तक सफल रहा परन्तु स्थायी नहीं हो सका। उस समय की एकता के पीछे राज्य

सत्ता पान की आगा थी। विजय हो जाती तो हिंदुआ और मुसलमानों दोनों को ही अपनी खाई हुई राज-मत्ता मिल जाती। परन्तु स्वातंत्र्य युद्ध व विफल हो जाने के कारण वह आगा मिट गई। बाद में मुसलमानों को अंग्रेजों ने स्वायत्तता का नाम दिया, और वे हिंदुआ से अलग हो गए।

हम जिन विषय पर विचार करना चाहते हैं उसके लिए यह जान लेना आवश्यक है कि इन सब उदाहरणों में एक बात सामान्य थी— एकता और फूट में साधारण जनता का कोई सम्बन्ध नहीं था। उसके सामने तो एकता और फूट का प्रश्न ही कभी नहीं रहा। शिक्षित, धनी और प्रभावशाली लोग मानते थे कि जो जिस आरंभ चाहते थे, मांड लेते थे और उस अपना अस्त्र बना लेते थे। भारत का जनता तो गणित का सुपुत्र भांडार है। उमांडन से वह उमड़ जाता है अथवा शान्त पड़ा रहता है। इसलिए प्रश्न नहीं कि शिक्षित और नरस्वामीय अन्य प्रभावशाली लोगों को मित्रता का रहा। और इनके सामने तो अपने स्वायत्त साधने का लक्ष्य ही प्रमुख रूप में रहता था। यही एकता भाव करने के दूसरे कारणों के भी शिखर थे। अधिकतर जनता गावा में रही। राजनीतिक उथल-पुथल या गहरा भगद-दण्ड से वह कभी प्रभावित होती ही नहीं थी। उसकी जीवन पद्धति उदासीनतामय थी— बाउ नृप हाउ हमहि का हानी चरो छाडि न होउव रानी। राजा लोग आपस में लड़ते रहते थे, परन्तु जनता का न तो सेतो आदि का काम रहता था न एक दूसरे राय में आना-जाना। इन पर भी फूट के कारण तो बड़ा रह।

बद वेदांत के आधार पर

आधुनिक भारतीय संस्कृति का प्रणेता राजा राममोहन राय ने स्वातंत्र्य युद्ध के पूर्व ब्रह्मसमाज की स्थापना द्वारा राष्ट्रीय एकता की दिशा में एक अधिक व्यापक प्रयत्न किया था। राजा राममोहन राय वेदान्त के निष्ठावान भक्त होते हुए भी ईसाई धर्म और यूरोपीय संस्कृति का प्रेमी थे। भारतीय मानस में धर्म का क्या स्थान है, यह वे भली भांति जानते थे। इसलिए उन्होंने धर्म का आचार लेकर ही, परन्तु उसमें कुछ परिवर्तन करके, जिससे वह ईसाइया और मुसलमानों का भी अपनी आरंभों के सब सम्प्रदायों और बुद्धिवादी लोगों को आकर्षित

चौदह उपसंहार

एकता कैसे हो ?

स्वाय एकता का सबसे बड़ा शत्रु है। दूसरे शत्रु हैं—धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता सामाजिक उच्च नीच भाव और दुःखबहार अपनी सस्कृति के सम्बन्ध में अहंकार और उसके सरक्षण तथा प्रसार के लिए पारम्परिक स्पर्धा आर्थिक विषमता और धन का आदर परम्परागत ईर्ष्या-द्वेष राजनीतिक सत्ता का लोभ या पराधीन देश में नीकरिया। एक बहुत बड़ा शत्रु और भी है—लोक जीवन के प्रति उदासीनता उपेक्षा भाव और आत्म सन्तुष्टि।

गांधीजी से पूर्व के प्रयत्न

गांधीजी के पूर्व अनेक महापुरुषों ने अपने काल और परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्र में पराक्रमशील एकता स्थापित करने के प्रयत्न किए, परन्तु उन सबको एक मर्यादा में ही सफलता मिल सकी।

हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या अनेक गतादिशा से विभिन्न रूपों में चली आ रही थी। इसे हल करने का सबसे पहला प्रयत्न बादशाह अकबर ने दीन-इलाही के प्रतिपादन द्वारा किया था। परन्तु वह उस समय के कट्टर और राज्याभिमानी मुसलमानों के विरोध के कारण मरुपत और हिन्दुओं के स्वधर्माभिमान के कारण सामान्यतः सफल नहीं हो सका।

दूसरा प्रयत्न कबीर आदि सूफी सन्तों ने किया। उसका भी अन्त बसा ही हुआ। परन्तु वह अपना प्रभाव सदा के लिए छोड़ गया है।

तीसरा प्रयत्न १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध के सम्बन्ध में हुआ। वह बहुत हद तक सफल रहा परन्तु स्थायी नहीं हो सका। उस समय की एकता के पीछे राज्य-

उपसंहार

सत्ता पान की आशा थी। विजय हो जाती तो हिंदुआ और मुसलमाना दोनों को ही अपनी खाई हुई राज सत्ता मिल जाती। परंतु स्वातंत्र्य युद्ध के विफल हो जाने के कारण वह आशा मिट गई। बाद में मुसलमाना को अंग्रेजों ने स्वायत्तता दी और वह हिंदुआ से अलग हो गए।

हम जिस विषय पर विचार करना चाहते हैं उसके लिए यह जान लेना आवश्यक है कि इन सब उदाहरणों में एक बात सामान्य थी— एकता और फूट से साधारण जनता का कोई सम्बन्ध नहीं था। उसके सामने तो एकता और फूट का प्रश्न ही कभी नहीं रहा। शिक्षित धनी और प्रभावशाली लोग या नता उसे जिस बात चाहते थे मांड लेते थे और उसे अपना अस्त्र बना लेते थे। भारत की जनता तो गविन का सुपुत्र भांडार है। उभाड़ने से वह उभड़ जाता है, अथवा शान्त पड़ा रहता है। इसलिए प्रगतिशील शिक्षित धनिक और नेतृत्वशाली अन्य प्रभावशाली लोगों को मिनाना पड़ा रहा। और इनके सामने तो अपना स्वायत्त साधने का लक्ष्य ही प्रमुख रूप में रहता था। यही एकता भंग करने के दूसरे कारणों के भी शिवांग थे। अधिकतर जनता गांधी में रही। राजनीतिक उथल-पुथल या शहरों में झगड़-टटा में वह कभी प्रभावित होती ही नहीं थी। उसकी जीवन पद्धति उदासीनतापूर्ण थी— बाउ नप होउ हमहिं का हानी चेरी छाडि न होउव रानी। राजा लोग आपस में लड़ते थे, परंतु जनता का न तो खेती आदि का काम खाना था, न एक दूसरे राज्य में आना जाना। इतने पर भी फूट के कारण ताबडो रह।

वेद वेदांत के आधार पर

आधुनिक भारतीय संस्कृति के प्रणेता राजा राममोहन राय ने स्वातंत्र्य युद्ध के पूर्व ब्रह्मसमाज की स्थापना द्वारा राष्ट्रीय एकता की दिशा में एक अधिक व्यापक प्रयत्न किया था। राजा राममोहन राय वेदांत के निष्ठावान भक्त होने के साथ ही ईसाई धर्म और यूरोपीय संस्कृति के प्रेमी थे। भारतीय मानस में धर्म का क्या स्थान है, यह वह भली भांति जानते थे। इसलिए उन्होंने धर्म का आधार लेकर ही, परंतु उनमें कुछ परिवर्तन करके, जिससे वह ईसाइयों और मुसलमानों का भी अपनी ओर खींच सके, सब सम्प्रदायों और बुद्धिवादी लोगों का आकर्षण

करने तथा एक सूत्र में वाचन का प्रयत्न किया। आगे चलकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी मृत्यु निश्चय समझकर ब्रह्म समाजिया को १८ सूत्रों का एक सदेश दिया था (१८८६) जो एकता की प्रेरणा से ओतप्रोत है। उक्त आरम्भ ऋग्वेद के इस मंत्र में होता है

सगच्छध्वं सवदध्वं स वो मनासि जानताम ।

देवा भाग यथा पूर्वं सजानाना उपासते ॥

समानो मन्त्र समिति समानी समान मन सह चित्तम ण्याम ।

समान मन्त्र अभिमन्त्रय व समानेन वा हविषा जुहोमि ॥

समानी व आकृति समाना हृदयानि व ।

समानम् अस्तु वो मनो यथा व सुमहासति ॥

ऋग्वेद १० १६१। २ ३ ४

अर्थात् एकसाथ मिलकर रहो। एक हाकर बोला। हृदय से एक हो जाओ। जमे पुरातन देवगण सब मित्रकर अपन-अपने स्थान पर बैठकर अपना अपना भाग ग्रहण करते हैं वैसे ही तुम भी करो। हृदय से एक हो जाओ। हेतु सबका समान है। सब सबका समान है। मन सबका समान है। इसलिए सबका विचार भी समान हों, एक हा। तुम्हारे प्रयत्न एकतामय हा तुम्हारे हृदय और विचार एक स हा (अर्थात् जब जो मंगलमय, कल्याणकारी एवं उचित हो उस समय सबके मन में वही विचार उठे और उसके अनुसार सब काम भी करें) जिससे तुम सब एक भाव सुग से रह सको।

यह प्रयत्न भी बहुत सफल नहीं हुआ। वैशवचन्द्र सेन ने इस सस्था का ईसाई धर्म प्रधान बनाने का प्रयत्न किया और इसमें फूट पड़ गई तथा समाज का ह्यम आरम्भ हो गया।

स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के प्रयत्नों द्वारा एकता दृढ़ करनी चाही। परन्तु उनका प्रयत्नो से उत्तर भारत के हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी सख्या तो आयसमाज व मंडे के नीचे सगठित हो गई और वह जाग्रत तथा पराक्रमशील भी थी परन्तु मुसलमान, ईसाई और सनातनी विचारों के हिंदू दूर हा गए। अर्थात्, इससे भी राष्ट्रीय एकता का प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ।

महाराष्ट्र में प्राथनासमाज और मद्रास में धियासाफिकल सासाइटी ने भी हिंदू धर्म और बदांत धर्म को ही प्रधान आधार बनाकर तथा सामाजिक सुधारों

राजनीतिक आधार पर हिंदुआ और मुसलमानों का मिश्रण करने का प्रयत्न तो १८५७ में हुआ था, दूसरा १९१३ में उस समय के मुहम्मद अली जिना ने किया। वह सफल भी हुआ। १९१६ में कांग्रेस १४ सूत्री योजना पर अपनी मुहर लगा दी और मुसलमानों का प्रमत्त स्वराज्य की लड़ाई में शामिल होने की गंजी भी गण। आग चलाने की नीति का खिलाफत का आंदोलन अपने हाथ में ले लिया। दमन बंद एकता और भी मजबूत हुई। परन्तु वह बहुत समय तक चल न सकी।

महात्मा गांधी जब भारतीय कमरे में उतरे, उनके सामने बड़े हिन्दू मुस्लिम-एकता का प्रश्न नहीं था। एकता तो उस समय निश्चय ही मजबूत थी, पर नु उह सार दश की स्वराज्य का मंत्र देना था और उम जगत् स्वराज्य मूल ले जाना था। उनकी कल्पना भी साधारण स्वराज्य की थी, सामंजस्य की थी। इसलिए उहे प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समुदाय और सम्प्रदाय का उत्तर जिन तयार करना था। प्रत्येक का सहयोग भी उमम प्राप्त करना था।

गांधीजी के प्रयत्न

स्वराज्य का। इसका माय ही उन्होंने यह आश्वासन देकर कि यदि मेरा कायक्रम मरे जाने के अनुसार पूरा किया गया तो एक वर्ष में ही स्वराज्य मिल जाएगा, जनता में विजली की जमी स्फूर्ति फलादा। लाग उसका लिए सब कुछ करने का तयार हो गए।

उसके बाद उन्होंने सभाम का माग बताया। वह था अहिंसात्मक असहयोग और सत्याग्रह का। इसमें तोषा और बन्दूका का आश्रय लेने की जरूरत नहीं थी, केवल अपने ऋषि मुनियों के बताए हुए माग पर चलने से ही लक्ष्य सिद्धि हासिल की जा सकती थी। और इसे वे अपनी धर्म-मुसलमान वचन से पढ़ते चल आये थे। उन्हें यह सरल मान्य हुआ। इसपर कुतूहल भी हुआ और अपना ही एक मौलिक माग होने के कारण अस्वागौरव भी हुआ। देश की समस्त साधारण जनता ने इसे एक दिल से स्वीकार कर लिया। अनेक गिणित व्यक्ति अपनी बकालत और नौकरिया छोड़ छोड़कर सबत्र फल गए और जनता का माग-अशन करने लगे। इन सभ्यताओं से उच्च चरित्रय निस्वार्थ सेवा त्याग कष्ट सहन आडम्बरहीन जीवन आदि का अपेक्षा की जाती थी और ये गति भर उम पूण करते थे। अतएव इनका अपने क्षेत्र के लोगों पर बहुत प्रभाव होता था।

परन्तु केवल त्याग और कष्ट सहन से तो सदा काम चलनेवाला नहीं था इसलिए गांधीजी ने उसका साथ ही रचनात्मक कार्यक्रम भी दिया जिसके निवारक निमाणात्मक और सदापरक तीन पहलू थे। निवारक पहलू बहिष्कार मद्य निषेध और अस्पश्यता निवारण आदि में यत्न होता था। निर्माणात्मक पहलू खादी तथा ग्रामोद्योग राष्ट्रीय शिक्षा और पचायताद्वारा माग प्राप्त करने में यत्न होता था। सदा का पहलू बुष्ट रोगियों, माया और अस्पश्यता आदि की सेवा में यत्न होता था। रचनात्मक कार्यक्रम की कल्पना गांधीजी ने अपने स्वप्न के रामराज्य की तयारी के रूप में की थी। वे कहते थे कि इन सब कार्यों से हम अपने जीवन को व्यवस्था स्वयं करने की कला तथा योग्यता अर्जित करनी चाहिए जिससे जब स्वराज्य आए उस समय हम उसे ग्रहण करने और सुचारु रूप में चलाने में अयोग्य न ठहरे। बहिष्कार के फलस्वरूप खाली हुए लोगों को तत्काल कुछ विधायक कार्य मिल जाए और उनकी शक्ति व्यर्थ न हो यह उद्देश्य तो इसका था ही, परन्तु काम ऐसा चुना गया जो राष्ट्र को स्वतंत्र करने में और उसके भविष्य-निर्माण करने में सहायक हो।

जा काम किसीने नहीं किया वह गाधीजी ने हाथ में उठाया, और उसमें सफलता पाई। वह था देश का स्त्रियाँ को जा केवल चूल्हे चौके से बंधी हुई थी, बाहर निकालन और उनसे स्वराज्य आन्दोलन का पूरा पूरा काम लेने का। जब तक स्त्रियों के लिए जा काम किए गए थे वे विधवा विवाह, बाल विवाह पर प्रतिबन्ध परदा प्रथा को तोड़न और उनके लिए थोड़ी बहुत शिक्षा की व्यवस्था तक ही सीमित थे। गाधीजी ने उन्हीं पुस्तिका की बराबरी का देश देकर स्वराज्य-सेना की शक्ति हजारों गुनी बढ़ा ली। उनके अहिंसात्मक कार्यक्रमों में स्त्रियाँ विशेष रूप से सफल हुई। उनके कर्मक्षेत्र में आ जाना स समाज के चारित्र्य का स्तर ऊँचा हुआ। एकता स्थापित करने में भी स्त्रियों का बहुत योग रहा। इस सबके अलावा अगली पीढ़ी को ऐसी सतानें मिली जिनकी माताआ न देश के लिए जेल की यातनाएँ, लाठियाँ और तरह-तरह के दूसरे कष्ट मंहे थे। अतएव मतानों में देशभक्ति की उत्कट भावना हाना स्वाभाविक था। स्वामी विवेकानन्द आदि कुछ युग पुरुषों ने इससे पहले भी लाकसेवा के लिए स्त्रियाँ का आह्वान किया था। परन्तु वह अधिक सफल नहीं हुआ था। गाधीजी के आन्दोलन में प्रातः स्मरणाया कस्तूरबा और भारत की क्विला श्रीमती सरोजिनी नायडू से लेकर छोटे छोटे कार्यकर्ताओं की माताएँ, बहन बेटियाँ और पत्नियाँ तक शामिल हुई।

केवल एक भावना

उन सब कार्यक्रमों से गाधीजी ने देश के विंगाल जन-समुदाय को पभावित करके सत्र घनों, जातियाँ, वर्गों और क्षेत्रों के साग का एकता के सूत्र में बाध दिया। दुभाग्यवश उनमें केवल एक ही भावना गहरी जड़ जमा सकी—स्वराज्य की। गाधीजी की असली शिक्षा का जो सत्य और अहिंसा की थी—और जिसमें स्वायत्त्याग, सेवा, तप, निरंतर कर्म प्रेम, दाय आदि के सनानन तत्त्व दूध रानी की भाँति घुल मिल थे—उन्होंने स्वराज्य संग्राम का आयुध मात्र समझा और स्वराज्य मिलते ही उनकी आवश्यकता पूरी हो गई, ऐसा मानकर उन्हें छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि गाधीजी इन दोना तत्त्वों के द्वारा जिन बुराइयाँ और कमियाँ को दूर करके रामराज्य की पक्की नींव डाल देना चाहत थे, वह सम्भव न हुआ और राष्ट्र अपने पुराने स्वार्थों सघनों, खीचातानी, मत्ता लोभ आदि के दलाल में फँस गया। राष्ट्रीय एकता भी तभी तक रह पाई जब तक

विभिन्न जातियों का उन्मूलन नहीं हुआ। आज एक बार फिर ग वही समस्या आगे के सामने मुहं बाकर खड़ी हो गई है।

गांधीजी के कायक्रम का आधार हिंदू धर्म और हिंदू परंपरा थी। इसलिए हिंदुजा पर उनका अधिक असर होता था। परन्तु वे सब धर्मों के प्रति समभाव रखते थे। उनमें मुख्य आत्मा सत्य और अहिंसा थी। इसलिए उनका कायक्रम किसी को अधिक धार्मिक भेदभाव सिखाता नहीं पड़ता था—और सभी उनका सवलाह हितपी मानकर उनकी सराहना करते थे, उनकी शिक्षाओं के अनुसार अपना या अपने समाज का जीवन ढालने की आशा करते थे। परन्तु भारतीय मुसलमानों का एक समुदाय उनके प्रभाव से अलग रह ही गया।

पर्याप्त साधना नहीं

हिंदू मुस्लिम ऐवय की स्थापना में पूणत सफल नहीं हुए, इसका कारण यह बताते थे कि 'मुसलम पर्याप्त गबिन नहीं आई, और अधिक साधना की जरूरत है।' पर्याप्त म इसका अर्थ यह होता है कि देग ने इस कठिन समस्या को हल करने के लिए पर्याप्त साधना नहीं की। और इससे इनकार कौन कर सकता है? यहीं साधना करने में इसी देग का एक सुबकन, जिसे साधना में सम्मिलित होना चाहिए था उह अपनी गोलिया का लक्ष्य बनाया।

इससे यह प्रश्न भी उठता है और उठाया जाता है कि उक्त सत्य तथा अहिंसा का आदेश इतने ऊँचे थे कि उनके सब प्रयत्न का बाद भी स्वाभाविक मयाग्रा से प्रप्त देग उनका पालन नहीं कर सकता था। अर्थात् उहान देग में जिस चारित्र्य का विकास करने की अपेक्षा को वह उनकी स्वाभाविक शक्ति के बाहर था। उन्हें चाहिए था कि वे देश की शक्ति का मापतौप कर उसका अनुसार ही उससे अपना करत, काम लें।

इसका उत्तर तो स्वयं गांधीजी ही दे सकते थे। परन्तु एक साधारण मा उत्तर यह हो सकता है कि राम कृष्ण महावीर, बुद्ध, ईसा और मुहम्मद को भी उनके जमाना के लोग कष्ट देने में नहीं शूक थे और उहोंने उनके जाशों की सिद्धि में पूरा योग नहीं दिया था। दूसरा और अधिक उपयुक्त उत्तर यह है कि उनका जिन आदर्शों का जनता का शक्ति का बाहर बताया जाता है उनका हा यकचिन् पालन करके उनमें स्वराज्य पा लिया और इन धर्मा पर आज भी

सोग कुतूहल और आश्चर्य करते हैं। आदश सदा वतमान गति की पहुँच के बाहर की वस्तु होता है। अथवा वह आत्मा ही कस रह ? उसके लिए कठिन साधना की आवश्यकता होगी है। गांधीजी की जो लोग आलोचना करते हैं उहाने कभी उनके आदर्शों पर चलने का प्रयत्न ही नहीं किया। कुछ लोगों ने एक हल तक प्रयत्न करके अपनी साधना का रास्ता दिया। परन्तु उनके चेतन या अचेतन मानस की महसूस हुआ कि आगे साधना न करने का कोई कारण बताना जरूरी है, नहीं तो जन साधारण में हम कमजोर या भगोड़े समझे जाएंगे और उनपर हमारी धाक न रहेगी। इसलिए उन्हें कहना पड़ा कि गांधीजी का आदर्श इतना ऊँचे है कि 'जन साधारण उनपर आचरण नहीं कर सकते। वास्तव में कमजोरी उनकी अपनी थी, अथवा नैतस्थानीय लोगों की थी। जन साधारण में तो आदर्श पर मर मिटने की गति अपार होती है। त्रुटि केवल यह होती है कि वह गति निरंतर जाग्रत नहीं रहती। उसे जाग्रत रखने के लिए नेता, गुरु आदि की जरूरत होती है। या उन्हें लगातार बढते रहने के लिए किसी ऐसे लक्ष्य की आवश्यकता होगी है जिसमें वे अलग न हो सकें।

गांधीजी ने उन्हें सत्य और अहिंसा के आधार पर रामराज्य का लक्ष्य प्रदान किया था। इसमें भी आगे बढकर उन्होंने आ-यात्मिक उन्नति करके मोक्षा भिमुखी बनने का अथवा अपने जासपास से प्रारंभ करके सारी सृष्टि का साथ ऐकात्म्य स्थापित करने का मार्ग दिखाया था। यह लक्ष्य भारतीय प्रवृत्ति के इतने अनुकूल और उसके लिए इतने आवश्यक हैं कि जन साधारण इनकी ओर बराबर बढते रहे मकने ये। गति केवल यह था कि उन्हें अवसर मिलता—आरंभ में ही कच्ची स्थिति में ही, उनके मार्ग में बाधाएँ और उनके मन में बुद्धि भेद या मध्य उपन न कर लिया जाता।

कमजोरों का आदर्शवाद

अधिकतर नैतस्थानीय लोगों की नित्यचिन्तना दूसरी थी, त्रिविध थी और गूढ़ सांसारिक थी। अर्थात् उनमें गांधीजी के आदर्शों की दृष्टि से कमजाग्रिया थी। कमजोरिया का भा एक आदर्शवाद होता है जिसे यथाथवाद जैसे अनेक सुन्दर नामों से पुकारा जा सकता है। उन नैतस्थानीय व्यक्तियों में इस 'कमजोरी के आदर्शवाद' की प्रणाली। इन्में अच्छा सा चोला पहनाकर उहाने इसके पीछे

दूमरो को भी गींच लिया जिसमें वस्तुद अकेले न रहें। जन-साधारण भ्रम में सत्य में पड़ गए। जतम के गांधीजी के अधिक साधनामूलक (इसलिए अपेक्षाकृत कठिन) माग को छोड़कर डा. नेतृस्थानीया के अल्प साधनामूलक (इसलिए अपेक्षाकृत सरल) माग की ओर मड़ गए।

वास्तव में दुबलता और कमी जन साधारण में नहीं नेतृस्थानीया में थी। और जो आलोचना होती है वह य बुद्धि प्रधान और अविरल साधना से भागन वाले ननेतृस्थानीय लोग ही करते हैं। इनमें कुछ बड़े-बड़े लोग होन हैं कुछ ग्राम स्तर के भी।

इस दृष्टि से देखा जाए तो गांधीजी के आदर्शों में कोई कमी नहीं थी। व जन-साधारण की अपार शक्ति के परे नहीं थे। परन्तु जन साधारण को सत्या जागरूक और साधना निरत रखने का दायित्व तिन लोग पर था उहाने उस ठीक रास्ते पर ले जाने के बदल अपना दुबलताए उसपर आरोपित करके उसे पीछे खींच लिया, गलत दिशा में चला दिया। यही कारण था कि गांधीजी के एकता के प्रयत्न पूरी तरह सफल नहीं हुए और बाद में उनकी दूसरी शिक्षाशा को भी भुला दिया गया।

यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन नेतृस्थानीय लोग में सभी वर्गों सम्प्रदाया आदि के लोग शामिल थे जो अपनी बुद्धि से जन-साधारण को प्रभावित करते थे। इसलिए हिंदू मुस्लिम एकरता स्थापित करने में गांधीजी को जो पूरी सफलता नहीं मिली (और भारत का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण रोक् न सका) उसकी जिम्मेदारी किसी एक सम्प्रदाय पर नहीं, सभी सम्प्रदाया के उन नेतृस्थानीय लोग पर है जा साधना माग से पीछे हटे या जिहाने उस कभी स्वीकार ही नहीं किया और आलोचना का माग स्वीकार करके जाने जनजाने, जन-साधारण को अपने कमजोरी के माग पर अपने पीछे खींच लिया।

ताकिका के तक

तक करनेवाले यह तक भां कर सकते हैं कि जब गांधीजी नेतृस्थानीय लोग का ही, जिनसे उन्हें काम लेना था अपने आदर्शों पर चलने के लिए तयार नहीं कर सके तब जिस जनता में वे उनके द्वारा काम करते थे वह उनके आदर्शों पर

कम चल सकती थी ?

जो सत्य दीखना है उसे स्वीकार करना ही होगा। परन्तु गांधीजी न मिट्टी के पुतना को जीन जागते मनुष्य बनाया और उनमें काम लिया। वे अपनी गति का उपयोग स्वराज्य प्राप्त करने तक ही कर सके। दूसरे आगे नहीं बढ़ सके। अर्थात् उन्होंने गांधीजी के आदर्शों पर उन्नति तो की परन्तु वे एक मजिल पर जाकर अटक गए। यदि गांधीजी अधिक जीवित रहते तो क्या आश्चर्य कि वे अपन व्यक्तिगत प्रभाव तथा अपन आत्मबल से उन्हें और आगे ले जाने ? यह अपेक्षा ना कोई नहीं कर सकता कि हर आदमी बराबर उन्नति करे या एक निश्चिन्त अवधि में सब साथी गांधीजी के बराबर धन जाए। कभी मनुष्य के जीवन में रुकावट नहीं आएगी यह भा कोई नहीं कह सकता। परन्तु यह अक्षर देखा गया है कि मनुष्य गिर गिरकर फिर फिर उठता है, और आगे भी बढ़ता है। नेतस्थानाय लोगों के जीवन में एक रुकावट आई। वे गिर। परन्तु फिर न उठते, या फिर न उठेंगे, यह कौन कह सकता है ? हम यह भी नहीं भूल सकते कि भारत राष्ट्र के इतिहास में गांधीजी के नेतृत्व के तीस वर्षों का इतिहास चमक तो सकता है, परन्तु वही सब कुछ नहीं हो सकता। जिसको जितना श्रेय मिलना चाहिए वह मिलेगा ही। गेय के लिए आत्मावाद या यहा तक कि अधविश्वास भी हेय न होगा।

गांधीजी न स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जो धनुमुखी कार्यक्रम देना को दिया था उसमें एवता के सबसे बड़े शत्रु स्वायत्त के सिर उठाने के लिए भौतिक आधार पर कभी गुणाश्रय थी ही नहीं। उनसे आन्तलन का मूलमंत्र ही त्याग था। और जनता न जिसका जितना अधिक त्याग देना उस उतना ही अधिक मिर-आवा लिया।

इसी प्रकार गांधीजी न धार्मिक कट्टरता को सर्वधर्म-समभाव का प्रचार करके, धार्मिक विषमताओं को अस्पश्यता निवारण द्वारा तथा वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा को नया तत्वगत अर्थ प्रदान करके, सांस्कृतिक अहंकार को सामाजिक भारतीय संस्कृति का रूप देकर, आर्थिक विषमता तथा धन के आदर को श्रद्धा-श्रमोद्योग का न्यायपूर्ण कार्यक्रम देकर, परंपरागत ईश्या-श्रेण को सत्य, अहिंसा प्रेम और चाय का संदेश सुनाकर, नीकरियों के लोभ को उनमें संवाभाव का समावेश करके मिटाने का प्रयत्न किया। राजनीतिक सत्ता का लोभ

उनके जीवा-काल में चित्ताजनक नहीं हुआ था, फिर भी बढ़ता रहा था। इस लिए गांधीजी ने उससे विरुद्ध कारवाही करती शुरू कर दी थी। यंत्रि के अधिन जाधित रहत और उनकी साक्षसथा सध की योजना पूरी हा नवती, ता बेअवाछ नीय स्थिति को टालन में सफल हा जात ।

गांधीजी की मराग्राही वृत्ति

गांधीजी का राष्ट्र को एक मूय में बाध दन में जा सफलता मिली उस हा कारण उनकी मूलग्राही वृत्ति तथा सत्य और अहिंसा का आग्रह तो था ही किन्तु कवत मौलिन निक्षा देने स वह सफलता नहीं मिल सकती थी । अतलए उहान अपनी प्रत्येक गिराश को तन्नु रूप काय क साथ जोड लिया था । और क हर काय को पहले स्वय करक उमका उदाहरण पेश कर दिया करत थे । यह उनकी सफ सता की सबसे बही वृत्ती थी ।

लोकजीवन के प्रति उदासीनता उपेक्षा भाव और आत्म सतोप भारतीय जनता के खन में भिद गया है । गावद यह सदिया की पराधीनता तथा तज्जय असहायता तथा निराशा स विवसित हुआ है । परंतु कारण कुछ भी हा, गांधीजी ने जनता को जाग्रन् वरके आसपास क और सार राष्ट्र के जीवन में रस लेने को प्ररित किया । उनक असहयोग और सत्याग्रह आंदोलन और उनक त्रिषायक कायक्रम—सर्वन यह काय किया । फलत लोगो में समस्त भारत को एक समभन की वृत्ति आई ।

गांधीजी क सिद्धांतों पर आज भी खोई हुई दाखने वाला राष्ट्रीय एकता को वापस लाया जा सकता है । परंतु उनके लिए जीवन पद्धति को तथा राष्ट्र-नीति को सत्य अहिंसा क अनुमार ढालना हागा । इस प्रकार स्थापित की हुई एकता स्वय सेवापरक, परात्रमगील सवेदनगील जागस्क और सातत्वमय होगी ।

परंतु गांधीजी ने लोकसेवा सध के लिए जो विधान बनाया था (अध्याय १०) उनमें उनक जीवन भर के अनुभवा का निचोड समाया हुआ ह । स्वतंत्र भारत क लिए उसमें अधिक सम्भावनाएँ हैं वह अधिक उपयुक्त भी है । उनमें एक प्रकार के सेवामय व्यक्तिगत और स्वाथरहित लावतन का समवय और नीच सऊपर की ओर विकास की व्यवस्था है । उससे शान्त अधिक लोकानुकूल और लाक हितकारी हो सकता ह ।

गैर सरकारी तरीके

एकता और सेवा के कुछ प्रयत्न तो आज राष्ट्रीय सरकार के द्वारा ही हो सकते हैं कुछ गैर सरकारी तरीके पर ही। जब तक गैर सरकारी साधना का विकास न किया जाए तब तक जनता और सरकार के बीच एकता जाना बहुत कठिन है यद्यपि अमभव नहीं माना जा सकता। यदि गांधीजी के परामर्श के अनुसार कांग्रेस को उस समय लोक सेवा मण में परिणत कर दिया गया होता तो वह आज अपनी उत्तम प्रतिष्ठा के कारण गैर सरकारी स्तर पर बहुत उपयोगी होती। परन्तु अब उसकी हस्ती ग्रासक दल की हो गई है, इसलिए वह गैर सरकारी स्तर पर सच्ची सेवा नहीं कर सकती। उसकी वह पुरानी प्रतिष्ठा और सेवा की परंपरा भी कायम नहीं रही।

भूदान ग्रामदान

गैर-सरकारी स्तर पर सेवा करने का दूसरा तरीका आचार्य विनोबा का भूदान ग्रामदान का है। उस सर्वोत्थ काय का अंग मानना चाहिए। सरकार अहिंसात्मक क्रांति के इस महान अनुष्ठान में सक्रिय सहभागिता करके देश का अप्रसूत बरतण मिट्ट कर सकती है। एकना स्थापित करने की शक्ति तो हम वादशालन के पा पा म नरी है। इससे उदभूत एकता बवल स्वराष्ट्र को ही नहीं, न य राष्ठा का ना एक मूत्र म बाधकर अहिंसात्मक क्रांति के माग पर अग्रसर कर सकती है। आचार्य विनोबा मागने हैं

- १ भूदान-ग्रामदान,
- २ धनदान कूपदान आदि,
- ३ धर्मदान
- ४ बुद्धिदान, विद्यादान आदि, और
- ५ जीवनदान।

द्वय कायत्रम द्वारा सत्य, अहिंसा, पाप, सेवा, प्रेम आदि सभी उन्नत गुणों का विकास होता है। परन्तु माधारण भाषा म यह अहिंसात्मक उपामा द्वारा जीवन संरस्था म मास्त्रिक क्रांति का साधन है। आज की भूक्ति परायण जीवन व्यवस्था म गात्र के गरीब लोग अपनी सम्पत्ति दान कर रहे हैं, यह इतनी ही एक

बहुत बड़ी भावनात्मक शक्ति है। परन्तु इसके बाद उन्हें मिलकर, पारस्परिक सहयोग के साथ अपने गाव का और बाद में अपने बहतर क्षेत्र को स्वावलम्ब्य बनाना है। इस निरंतर बढन वाले क्षेत्र की कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। यदि आन्दोलन का आदर्श के अनुरूप चलाया जाए तो वह सारे विश्व को अपनी समष्टि में ले सकता है। इसमें पहले पहल गाव बाला का धम होगा, कुछ स्थानीय या बाहरी लोग का धम होगा और पढे लिखे लोग की विद्या का योग होगा। जोवनदानी इस पूण करने का व्रत लेंगे। यह सब सदभावना के आधार पर। किसीका कोई विरोध स्वाय इसमें न हागा। परन्तु सबके स्वाय में व्यक्ति का स्वाय तो पूरा होता ही है। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि देश में दो अथ व्यवस्थाएँ एक साथ चलेंगी। एक सरकार द्वारा स्वीकार की हुई पूणत भूति परायण अथ-व्यवस्था है दूसरी यह अध्यात्म परायण होगी। भूति परायण में आरम्भिक अध्यात्म परायण को बहाल जाने की शक्ति होती है जैसे बजित फल के लोभ ने आदम और हीवा को उनके स्थान से गिरा दिया था। यही सरकार की समझौतारी और सहानुभूतिपूण सहायता की कमीनी होती है।

समन्वय आन्दोलन

तीसरा तरीका है, आचार्य काकासाहब कालेलकर का समन्वय आन्दोलन। इधर कुछ वर्षों से वे लगातार विभिन्न धर्मों में समन्वय स्थापित करने के कार्यक्रम चला रहे हैं। यद्यपि अभी इन कार्यक्रमों का क्षेत्र धार्मिक समन्वय तक ही सीमित है, इनमें विकास की बहुत सम्भावनाएँ हैं। आखिर धर्म ही तो भारत में सम्पूर्ण जीवन को नियमित और नियंत्रित करता है। जनएव यह मूलब्रह्मी आन्दोलन है। यह पूरा अनुष्ठान ही अभी एकता का है—यापक और स्थायी एकता का और धार्मिक विश्वासों में शक्ति का, नवजागरण का। इसे एकता के प्रयत्न में आधारभूत स्थान दिया जा सकता है। समन्वय का अर्थ आचार्य काकासाहब कालेलकर क ही शब्दों में यह है

विश्व का सब धर्मों का एक धर्म परिवार है धम-कुटुम्ब है। इसका स्वीकार जब सब धर्म करेंगे तब वे पारस्परिक वमनस्य और शीत युद्ध छोड़ देंगे। हर एक धर्म में मौलिक दोष हैं कमजोरियाँ हैं। और कई दोष या ही घुस गए हैं। हर एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म की निंदा करने का धधा छोड़कर अपने अपने

धम की परंपरा का गुद करत जाए, सब धर्मों के साथ पारिवारिक सम्बन्ध बंटा जाए और दूसरे दूसरे धम में जो कुछ अच्छा लगे उसका स्वीकार करते जाए, यही एक करामाण का मांग है—'सीमा कहते हैं 'सम-वय'। ('मंगल प्रभात', जून १, १९६६)।

यहां स्वामी विवेकानन्द के एक वचन का उद्धृत कर दना समीचीन होगा।
उन्होंने कहा है

'मरा अनुभव यही रहा है कि सना दोषों की उत्पत्ति, जैसा कि हमारे ग्राम्य कहते हैं 'भे' भाव में विश्वास रखने के कारण होती है। और समानता में, सबभूता के अन्त स्थित एक-एक में विश्वास करने से मदहिजा की प्राप्ति होती है। यही महान् वनातिक्रम आदर्श है। इसके विपरीत हमारा अनुभव है कि दैनिक व्यावहारिक जीवन में इस समता तक पमाप्त मात्रा में यदि किसी धम के अनुयायी बना पडुचें हैं तो वह हैं केवल इस्लाम के अनुयायी—भले ही उन्होंने उच्च वन्त स्थित गूढ अर्थ का न समझा हो, जिसे माघारणत हिंदू लोग स्पष्ट रूप से समझते हैं। हमारी मातृभूमि के लिए केवल एक ही आगाह और यह है हिंदू आर इस्लाम धर्मों का—इदानीं मस्तिष्क और इस्लामी शरीर का—मयोग। ('नाति मस्तिष्क और ममाजवाद', श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, पृष्ठ २४।)

गान्धि-सेना

अधाय विनावा और आचार्य काकासाहब कालकर दोनों ही गान्धि-सेना के संगठनको भी प्रो-माहन और बल प्रदान कर रहे हैं। गान्धि-सेना का संगठन सर्वोच्च काय का अंग है। यह काम गर मरकारी ढंग से किया जा रहा है। परन्तु देश में राष्ट्रिय सरकार के हात हुए यह गरमरकारी रूप में राष्ट्रव्यापी बन सकना ऐसी आगाह नहीं होती। यदि राष्ट्रव्यापी रूप में सफल हो जाए तो इस संगठन का बहुत-सा समस्याए हल हो सकती हैं। राष्ट्रिय एकता की समस्या ठा हल हो ही जाएगा। यह एक बहुत बड़ा माघन है जिसकी सहायता लेकर सरकार नव जीवन के निर्माण का मरत बना सकती है। अपनी वतमान नीतियां का बदले बिना सरकार स्वयं मका संगठन और विनास मरतता नूतक कर सकती है या नहा, यह कहना कठिन है। परन्तु प्रयाग ठा किया हो जा सकता है।

ऐक्य हागा । हमरा राष्ट्र अत्यन्त शक्तिशाली बनगा ।'

उस दिन गांधीजी का पुनर्जन्म हुआ और वह फिर से एक बार घोषणा करे।
'भारत में जो कुछ भी है सब मुझे आकर्षित करता है। ऊँची से ऊँचा भावाक्षय वाला मनुष्य जो कुछ चाह सकता है, वह सब भारत में मौजूद है। भारत मूलतः कमभूमि है, भागभूमि नहीं। भारत सबकी आत्मबल से जात बनता है। मैं भारत का उत्थान चाहता हूँ जिम्मेदार विचारों के साथ हो। मैं नहीं चाहता कि भारत हमारे राष्ट्रा की राख पर पड़ा हो। और एक बार फिर मैं यह ध्वनि बातावरण में गूँज उठेगी

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्या जगत् ।

तन्न त्यक्तं भुञ्जीथा मा गप वस्यस्विद्धनम् ॥

हम छोटे मनुष्य तो इतना ही साच सकते हैं कि समस्त राष्ट्र एकता में मेल जोल से रहे जिससे हमारी शक्ति बढ़े हम यथेष्ट धनोपाजन करने निर्विघ्न उसका उपयोग करें कोई बाहरी राष्ट्र हमपर आक्रमण करने हमारी स्वतंत्रता या सम्पत्ति छीनने का प्रयत्न कर तो हम सफलतापूर्वक अपनी रक्षा कर सकें आदि। यह अधिक शक्ति और पूर्ण भौतिक बात भी हम सोच सकते हैं कि हम एक होकर प्रयत्न करें जिससे हमारा समाजवाद का लक्ष्य पूर्ण हो जाए और राष्ट्र में मनुष्य मनुष्य के बीच बतमान आर्थिक तथा सामाजिक विषमता न रहे। हम साम्प्रदायिक एकता की बात सोच सकते हैं भाषाई क्षेत्रीय दलीय एकता की बात सोच सकते हैं, बहिष्कृत हुआ तो, भावनात्मक एकता की चर्चा कर सकते हैं। सबका उद्देश्य एक ही है—सांसारिक सुख, निर्वाण सांसारिक सुख ।

अखिल सृष्टि का शाश्वत ऐक्य

परन्तु जिनकी आत्मा उन्नत है, वे इन सामाजिक मुद्दों को तुच्छ मानकर अखिल सृष्टि के साथ शाश्वत ऐक्य स्थापित करके परमकल्याणकी साधना करते हैं। वे आत्मा में विद्वात्मा को और विद्वात्मा में आत्मा को देखने की साधना करते हैं जिसे दुःखमात्र का अन्त हो जाए और सब सुखी हो, सब तिरोग हों, सब सब में गुम दलें—सबत्र शुभ का साम्राज्य हो जाए ।

गीता में भगवान ने कहा है

समं सर्वेषु भूतसु तिष्ठन्त परमेश्वरम् ।

विनश्यत्स्वविनश्यन् म पश्यति स पश्यति ॥

सम पश्यन्हि मवन्न समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥१३॥ २-२८

शरीर का नाग होता है, परन्तु शरीर का स्वामी आत्मा हर शरीर में मन-
भाव से रहता है, उसका नाग नहीं हाता। जो यह देखता है, वही देखता है। जो
सब आर्षों होते हुए भी देखते नहीं। ईश्वर का मवन्न एक समान देखने के कारण
ईश्वर का एक रूप ईश्वर के दूसरे रूप का इनका कस कर मक्ता है ? यह तो
असंभव है। इस प्रकार देखन वाला मनुष्य परम गति प्राप्त करता है।

उपनिषद् का ऋषि कहता है

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि जातमवाभूद्विजानतः ।

तत्र का माह क शोक एकत्वमनुपश्यत ॥

—ईश० ७।

जो सब भूता में आत्मा को ही देखता है उस निरंतर एकत्व दखन का
विज्ञानी पुरुष का मोह कहा और शोक कहा ?

भारत का यही आदेश है। उसका ऋषि मुनिया ने और उसका बदाम्बु २२
एकता का यही सनातन सदाग मुनाया है। गांधीजी की सत्य की सत्य का ५२-
सदय यही था। तत्त्वज्ञानी इस तत्त्व को समझकर कृतायतुए हैं और आज का
हैं कि किसी न किसी दिन सारा विश्व इस महान मत्त का समझकर और स्वागत
करके कृतायतु अनुभव करेगा। बुद्धि में जो समझ लिया गया है, कम से कम
पुष्ट न किया जाए तो वह छूटता रहेगा। यह शि या ऋषि मुनिया ने ही। गांधीजी
ने कम का मरल माग दिताकर इन गांधीजी का मरल विज्ञान बना दिया,
इसकी क्रमिक साधना मक्के लिए मुनाय का २। मक्के लिए वनातिका न उनका
आमार माना और उनका सिर उनका सामन थदा स नत हो गया।

विनश्यत्स्वविनश्यन्त य पश्यति न पश्यति ॥

मम पश्यन्हि सवत्र समवस्थितमीश्वरम ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परा गतिम् ॥१३॥ २७-२८

शरीर का नाग होता है, परन्तु गरार का स्वामी आत्मा हर शरीर में मम भाव से रहता है, उसका नाग नहीं होता। जा यह देखता है, वही देखता है। शेष मम भावों होत हुए भी देखत नहा। ईश्वर को ममत्र एक समान देखने के कारण ईश्वर का एक रूप ईश्वर के दूसरे रूप का हनन कस कर सकता है ? यह तो असभव है। इस प्रकार देखन वाला मनुष्य परम गति प्राप्त करता है।

उपनिषद् का ऋषि कहता है

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मवामुद्दिजानतः ।

तत्र का माह क शोक एकत्वमनुपश्यत ॥

—ईश० ७ ।

जा सब भूता में आत्मा का हा देखता है उन निरंतर एकत्व देखने वाले विज्ञानी पुरुष का मोह कहा और शोक कहा ?

भारत का यही आत्मा है। उसका ऋषि मुनिया न और उसका वेदान्त न उस एकता का यही सनातन सदा मुनाया है। गाधीजी का सत्य की खाज का परम सत्य यही था। तत्त्वचाना इस तत्त्व को समझकर बृताथ हुए हैं, और आशा करत हैं कि किसी न किसी दिन सारा विश्व इस महान सत्य को समझकर और स्वीकार करके बृताथता अनुभव करगा। बुद्धि में जा ममम लिया गया है, कम से उसे पुष्ट न किया जाए तो वह छूटा रहगा। यह गिना ऋषि मुनिया न दी। गाधीजी ने कम का मरल माग लिखाकर इस शाश्वत चान का सरल विज्ञान बना लिया, इसको अधिक साधना ममम लिए सुगम कर दी। इसके लिए वचानिका न उनका आमार माना और उनका सिर उनके सामने थड़ा स नत हो गया।

० ० ०